

अर्ह ध्यान योग

लेखक

डॉ० अखिलेश चन्द्र सक्सैना

एम०ए०, एम०पी०एड०, पी-एच०डी०

(शारीरिक शिक्षा), निदेशक -शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद विभाग,

डॉ० भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय (पूर्ववर्ती: आगरा विश्वविद्यालय) आगरा।

डॉ० खुशबु जैन

एम०ए० (योग एवं जीवन विज्ञान) एम०एससी०, पी-एच०डी०

जैव विज्ञान(डीआरडीओ), सहायक प्राध्यापक, संबद्ध विज्ञान विभाग

मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार

ओं अर्ह सोशल वेलफेयर फाउंडेशन, मंदसौर

कृति	: अर्ह ध्यान योग
आशीर्वाद	: संत शिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज
प्रेरणा	: अर्ह योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर जी
लेखक	: डॉ० अखिलेश चन्द्र सकसैना, एम०ए०, एम०पी०एड०, पी-एच०डी० (शारीरिक शिक्षा), निदेशक -शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद विभाग, डॉ० भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय (पूर्ववर्ती: आगरा विश्वविद्यालय) आगरा। : डॉ खुशबु जैन, एम०ए० (योग एवं जीवन विज्ञान) एम०एससी०, पी-एच०डी० जैव विज्ञान(डीआरडीओ), सहायक प्राध्यापक, संबद्ध विज्ञान विभाग मोरावरजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार
संस्करण	: प्रथम, मई 2023
प्रतियाँ	: 1100
आईएसबीएन	: 978-81-953415-1-1
मूल्य	: 200/- मात्र
प्रकाशक	: ओं अर्ह सोशल वेलफेयर फाउंडेशन मोबाइल: 9425837476
प्राप्ति स्थान	: आर्हत विद्या समिति, गोटेगाँव मोबाइल: 9425837476 आचार्य अकलंक देव जैन विद्या शोधालाय समिति 109, शिवाजी पार्क, देवास रोड, उज्जैन मोबाइल: 9425092483
अधिकार	: सर्वाधिकार सुरक्षित किसी को भी प्रकाशित करने का अधिकार नहीं है। प्रकाशन से पहले लिखित अनुमति आवश्यक है।



आशीर्वचन

ओं अर्हं नमः

विद्यार्थी के जीवन की तपस्या विद्यार्जन करना है। जो भी विद्यार्थी पहले भारतीय संस्कृति में विद्यार्जन करते थे। वह राज विद्याओं के माध्यम से विद्यार्जन करके आगे बढ़ते थे। आज के समय में भी इन राज विद्याओं की जरूरत है और इन राज विद्या में सबसे पहली विद्या आध्यात्मिक विद्या आती है। **जिसे भारतीय संस्कृति आन्वीक्षिकी विद्या के नाम से कहा जाता है।** जो भी विद्यार्थी इस अध्यात्म की विद्या के साथ में जीना सीख लेता है वह अपने जीवन में आने वाली अनेक तरह की बाधाओं का सामना हँसते खेलते कर जाता है। विद्यार्थी जीवन में हम बहुत सारी चीजें सीखते हैं लेकिन योग ध्यान एक ऐसी पद्धति है जिसके माध्यम से हमारी

आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है। अगर हम अपनी उस आध्यात्मिक शक्ति के विकास में थोड़ा भी समय लगाते हैं तो जीवन में लगने वाले बहुत सारी विद्याओं के अर्जन के समय से काफी ज्यादा लाभ हमें प्रदान करता है। **अध्यात्म का संबंध आत्मा से होता है।** जब भी कोई व्यक्ति इस अध्यात्म विद्या को सीखता है जानना चाहता है तो उसे आत्मा इन्द्रियाँ मन, प्राण, शरीर, अपनी ज्ञान और बुद्धि इन सबका उसे अच्छे ढंग से ज्ञान होना चाहिए। अगर वह अपने अंतरंग में या अपने शरीर के साथ रहने वाली इन सब चीजों के बारे में बिना किसी doubt के जानता है। तो वह विद्यार्थी आध्यात्मिक यात्रा पर उतर जाता है। इस तरह के अध्यात्म ज्ञान के माध्यम से आप अपने मानसिक विकारों को अपने जीवन में आने वाली भावनात्मक कमजोरियों को और अपने शारीरिक रोगों को इन सब को आप जीतने की, इनसे सामना करने की आपके अंदर एक क्षमता आती है। और इसी क्षमता का विकास करने की पद्धति का नाम **अर्हं ध्यान योग** की पद्धति है। इस पुस्तक में **अर्हं ध्यान योग** का पूरा का पूरा theoretical भाव इसमें दिया गया है और इस theory के माध्यम से आप अपनी चेतना को समझ सकते हैं। आप अपने मन को समझ सकते हैं। **आप अपने भाव, विचारों को समझ सकते हैं।** और उनको कैसे हम समायोजित करें इसकी शक्ति भी आपको इस अर्हं ध्यान योग के पद्धति से प्राप्त हो जाती है। अधिकतर बच्चे इस बात से परेशान रहते हैं कि हम चीजें जानते तो सब हैं। लेकिन हम उन overcome नहीं कर पाते हैं। उनको control नहीं कर पाते हैं। तो उस को control करने के लिए आपको एक बार इसकी practice करनी होगी और वह practice अगर आपने एक बार भी करके अपने अंदर अगर एक percent भी करके आपको लाभ मिल रहा है तो और आप उसकी practice को बढ़ाएंगे तो आपको उसका लाभ 100 percent तक प्राप्त होगा। **यह practice से प्राप्त होने वाली साधना पद्धति होती है।** जो भी हम विद्यार्थी जीवन में पढ़ते हैं उसमें practice कम होती है theory ज्यादा होती है। लेकिन knowledge वही काम



आती है जो practical के साथ होती है। तो ध्यान और योग की पद्धति एक practical पद्धति है। इसके लिए आपको dedicated हो करके time देना पड़ेगा। अगर आप उसमें से किसी भी तरह के अभ्यास करने के लिए time निकालते हैं तो आपको इससे बहुत लाभ होगा। यह university के अंदर इस book को समाहित करने का मुख्य उद्देश्य ही है कि हर बच्चा हर विद्यार्थी **अपनी आत्मिक शक्तियों को उजागर करे**। अध्यात्मिक शक्तियों को विकसित करे और हर कोई इस ध्यान की पद्धति से लाभान्वित हो ताकि वह अपने तन मन और चेतन को सशक्त बना करके देश और समाज की उन्नति में अग्रणी हो।

इन्ही मंगल कामनाओं के साथ **ओं अर्ह नमः**

मुनि श्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज



प्रस्तावना

अत्यंत हर्ष के साथ **अर्ह ध्यान योग** पर रचित यह पुस्तक समस्त इच्छुक पाठक गण के लिए समर्पित है। चूंकि ध्यान योग पर अधिक जानकारी का अभाव रहा है **परम पूज्य अर्ह योग प्रणेता मुनि श्री प्रणम्य सागर जी** का आज की नव पीढ़ी पर परम उपकार है और हम हृदय से गुरुदेव के आभारी हैं जो उनके असीम ज्ञान की बूंद हमें इस पुस्तक की रचना हेतु प्राप्त हुई है। यह पुस्तक, विषय का सैद्धांतिक व वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए विद्यार्थियों के लिए अति लाभकारी होगी। प्रस्तुत पुस्तक के विषय वस्तु M.A, B.A, P.G diploma (योग) M.P.Ed, MPES, BPES योग में शोध कर रहे शोधकर्ताओं तथा अन्य कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए अत्यंत लाभप्रद होंगे। इस पुस्तक में प्रस्तावना, योग का अर्थ और योग के जो 8 अंग होते हैं, उनके बारे में विस्तार से बताया गया है। इन 8 अंगों में यम, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि शामिल हैं और नियमों में संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान भी शामिल है इसी तरह से आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, समाधि आदि सारे विषय इसमें शामिल किए गए हैं।

इस पुस्तक में संस्कृति और समन्वय पर विस्तार से व्याख्या की गई है जो कि जिन दर्शन पर आधारित है। इसमें योग आचार्य पूज्यपाद के द्वारा , आचार्य श्री वीरसेन के द्वारा लिखित समता योग और एक अन्य अज्ञात प्रक्रिया के द्वारा योग के आठ अंगों का विशद वर्णन किया गया है। साथ में इसमें प्रेरणास्पद अर्हम ध्यान योग का अर्थ दिया गया है और इसके लाभ बताए गए हैं और इसमें यह भी बताया गया है कि किस तरह से योग किया जाए उसके क्या लाभ होंगे। इसमें पंच मुद्रा जिसे पंच नमस्कार भी कहते हैं, विस्तार से बताया गया है। अरिहंत मुद्रा, सिद्ध मुद्रा, आचार्य मुद्रा, उपाध्याय मुद्रा, साधु मुद्रा पंच नमस्कार मुद्रा को चार्ट द्वारा समझाया गया है। साथ में किस तरह से मनुष्य को आराम महसूस होता है, आध्यात्मिक योग, और किस तरह से उपचार होता है उसके बारे में भी इस पुस्तक में विस्तृत व्याख्या की गई है।

इसमें स्वास्थ्य संबंधी अध्याय हैं जिसमें अर्ह मंत्र शक्ति, ध्वनि तथा नाद शक्ति, जप, नाद और नाद के प्रकार का वर्णन किया गया है। इसी के साथ साथ जागरूकता त्रयशुद्धि, आध्यात्मिक शांति का वर्णन किया गया है। साथ में इसमें प्रेरणा और विश्व कल्याणी अर्ह योग प्रार्थना को समाविष्ट किया गया है। प्राणायाम के लिए पुस्तक में संपूर्ण अध्याय दिया गया है जिसमें प्राणायाम, प्राण तथा प्राणों के प्रकार, श्वसन, श्वसन के प्रकार, नाड़ी और जीवन प्रत्याशा एवं श्वसन तंत्र की विस्तृत व्याख्या की गई है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास किया जाए और प्राणायाम के प्रकार इसमें बताए गए हैं, जिनमें ऐश्वर्य प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, पंच केंद्र प्राणायाम और कायोत्सर्ग प्राणायाम शामिल है। आध्यात्मिक योग कायोत्सर्ग को करने की विधि और उस से प्राप्त होने वाले लाभ का भी विस्तृत वर्णन है। एक अन्य अध्याय में नाड़ी और



उसके महत्व को दर्शाया गया है जिसमें नाड़ी शुद्धि के लाभ, सगुण स्वर और निर्गुण स्वर, शुक्ल पक्ष का शुभ स्वर, कृष्ण पक्ष का शुभ स्वर इत्यादि का वर्णन किया गया है। अर्हम अष्टांग योग में 8 अंगों का वर्णन किया गया है जिसमें ध्यान कर्ता, ध्यान, ध्यान का लक्ष्य, ध्यान का फल, ध्यान का उद्देश्य, ध्यान का स्थान, ध्यान का समय और ध्यान की पद्धति के बारे में बताया गया है साथ में इसमें इसके क्या लाभ होंगे इसके बारे में भी विस्तृत व्याख्या की गई है। एक अन्य अध्याय में ध्यान का लक्ष्य और उसके उद्देश्य के बारे में बताया गया है जिसमें ध्येय अर्थात् ध्यान का उद्देश्य जिसमें चार प्रकार के साधारण उद्देश्यों के फल, उद्देश्यों की आत्मा अथवा सार तत्व, उद्देश्यों के आदर्श विचारों और आनंद केंद्र पर ध्यान, को शामिल किया गया है। इस प्रकार यह पुस्तक हर व्यक्ति के लिए अत्यंत उपयोगी है उन लोगों के लिए भी जो स्वतंत्र रूप से योग करते हैं अथवा स्वतंत्र रूप से योग सीखते हैं

डॉ० अखिलेश चन्द्र सक्सैना

एम०ए०, एम०पी०एड०

पी-एच०डी० (शारीरिक शिक्षा)

निदेशक -शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद विभाग,

डॉ० भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय(पूर्ववर्ती: आगरा विश्वविद्यालय) आगरा।



प्रस्तावना

अर्ह ध्यान योग अब जन जन में प्रचलित हो रहा है। विशेषकर युवा वर्ग भी योग एवं ध्यान के महत्व को समझ रहा है। इस पद्यति का लाभ भावी पीढ़ी तक पहुंचाने के लिए इस पुस्तक का लेखन विशेषतः विद्यार्थी वर्ग के लिए किया गया है। आज तक अर्ह ध्यान योग साधक गण, ज्ञान पिपासु, जिज्ञासु जन के लिए उपलब्ध था, परन्तु आशा करती हूँ यह पुस्तक विशेषतः अध्ययन के इच्छुक शिक्षार्थियों के लिए सरल शब्दों में अर्ह ध्यान योग के विभिन्न पक्षों जैसे सैद्धांतिक एवं वैज्ञानिक पक्षों का अध्ययन करने में सहायक होगी। पुस्तक की विषय वस्तु सरल एवं व्यवस्थित है। पुस्तक को पांच अध्याय में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय में अर्ह ध्यान योग का परिचय कराया गया है। जैन योग, तीर्थंकर की परंपरा, योग का अर्थ, योग के आठ अंग की ज्ञात परंपरा, योग की श्रमण परंपरा एवं अर्ह योग की प्रेरणा आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। अनादि काल से चली आयी इस आत्मा एवं शरीर (पुद्गल) के मिलन से उत्पन्न हुई पर्याय एवं अवस्थाओं से जो दुःख प्राप्त होता है, उसकी समाप्ति के लिए तीर्थंकरों के हितकारी उपदेश जैन दर्शन में निहित हैं, उसी तीर्थंकर परंपरा को हमारे मुनियों ने आगे बढ़ाया, इसी परंपरा एवं जैन योग का वर्णन इस अध्याय में मिलता है। इसके अध्ययन से विद्यार्थी को श्रमण (जैन) परंपरा का ज्ञान होगा।

द्वितीय अध्याय में ध्यान योग को करने की उपयुक्त विधि एवं इससे होने वाले शारीरिक एवं मानसिक लाभ के बारे में बताया गया है। पांच केंद्र, पंच नमस्कार मुद्रा, कायोत्सर्ग, ध्वनि एवं नाद, आध्यात्मिक भावनाएँ और विश्व कल्याणी अर्ह योग प्रार्थना अर्ह ध्यान योग के मुख्य अंग हैं। इनकी उचित विधि से ही संपूर्ण लाभ को प्राप्त किया जा सकता है। जो पाठक अर्ह ध्यान योग के व्यावहारिक पक्ष में रुचि रखते हैं, यह अध्याय उनके लिए विशेषतः अध्ययन की विषय वस्तु प्रदान करता है।

तृतीय अध्याय प्राणायाम के महत्व को दर्शाता है। श्वास के प्रकार, प्राणायाम के भेदों के अभ्यास एवं विधि और नाड़ी के प्रकार एवं महत्व इस अध्याय का मुख्य विषय है। प्राण किसी भी जीव के जीवन के लिए कितने महत्वपूर्ण हैं यह तो सब जानते हैं, पर इनके साधन से किस प्रकार ध्यान को साधा जा सकता है, इस विषय का ज्ञान इसी अध्याय से मिलता है।

चतुर्थ अध्याय अर्ह अष्टांग योग को समर्पित है। योग के आठ अंग, ध्यान के आठ अंग, ध्यान के अष्टांग, ध्याता, ध्यान, फल, ध्येय, ध्यान का विषय, ध्यान का क्षेत्र काल, रीति का वर्णन इस अध्याय में किया गया है। प्राणायाम के बाद ध्यान की उपयुक्त विधि से किया गया ध्यान अत्यंत लाभकारी है। यह अध्याय ध्यान के क्षेत्र में पाठक गण को ज्ञान देगा।



अंतिम **पंचम अध्याय** मे ध्यान के सैद्धांतिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बताया गया है। यह अध्याय मुख्यता युवाओं की ध्यान एवं योग से सम्बंधित जिज्ञासा का समाधान वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रदान करने में सहयोग करेगा। इस अध्याय में क्या करें (Do's), क्या ना करें (Don't's) पर भी प्रकाश डाला गया है, एवं हमारा भोजन कैसा होना चाहिए, शाकाहार, प्राकृतिक दूध एवं सिंथेटिक दूध जैसे ज्वलंत विषयो को भी बताया गया है।

पुस्तक को पाठक गण को सौंपते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है। सर्वज्ञ द्वारा बताया गया, गणधरो द्वारा गुंथा गया, **आचार्य प्रवर श्री विद्यासागर जी महाराज** के परम शिष्य, अहं ध्यान योग के सृजन कर्ता **मुनि श्री प्रणम्य सागर जी महाराज** के श्री मुख से जो ज्ञान सीखा, उसकी कुछ बुँदे इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत है। गुरुओं की कृपा से इस कार्य को करने में सफल रही, उन्हें नमन करती हूँ, एवं आशा करती हूँ इस अल्प मति पर उनकी कृपा द्रष्टि बनी रहे। त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। साथ ही पुस्तक के संयोजन, प्रकाशन आदि में जिन विद्वतजनों ने सहयोग प्रदान किया उनके प्रति आभार प्रकट करती हूँ।

डॉ खुशबु जैन

एम०ए० (योग एवं जीवन विज्ञान) एम०एससी०,

पी-एच०डी० जैव विज्ञान (डीआरडीओ),

सहायक प्राध्यापक, संबद्ध विज्ञान विभाग

मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार



अनुक्रमणिका

UNIT 1: अर्ह ध्यान योग	1
Chapter 1.1 - अर्ह ध्यान योग - एक परिचय	2
जैन योग की प्राचीनता	2
तीर्थकरों की परम्परा आचार्यों तक	2
ध्यान की विशेषता	3
जैनयोग के विविध आयाम	3
अर्ह ध्यान योग	3
अर्ह ध्यान योग साहित्य	4
Chapter 1.2 - योग का अर्थ	6
योग एक आध्यात्मिक प्रक्रिया	6
कर्म, आत्मा और अर्ह योग	7
योग शब्द की व्युत्पत्ति	8
संसार और मोक्ष का कारण योग	8
ध्यानयोग	9
स्व-पर उपकारी विद्या	10
Chapter 1.3 - योग के आठ अंग की ज्ञात परम्परा	11
योग के अष्टाङ्गों का परिचय	11
यम	11
अहिंसा	11
सत्य	12
अस्तेय	13
ब्रह्मचर्य	13
अपरिग्रह	14
नियम	15
शौच - शरीर और मन की शुद्धि	15



संतोष - संतुष्ट और प्रसन्न रहना	16
तप - स्वयं से अनुशाषित रहना	17
शरीर के लिए तपस, शब्दों के लिए, मन के लिए।	17
स्वाध्याय - आत्मचिंतन करना	17
ईश्वर-प्रणिधान - ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण	18
आसन	19
प्राणायाम	20
प्रत्याहार	21
धारणा	22
ध्यान	23
समाधि	23
जैन ग्रंथों में प्रचलित अष्टाङ्ग योग की मान्यता	23
Chapter 1.4 - योग की श्रमण परंपरा	25
जैन दर्शन में योग	25
आचार्य पूज्यपाद का योग	26
श्री वीरसेन आचार्य द्वारा सम्मत योग के अंग	27
योग के आठ अंग- एक अज्ञात पद्धति	27
Chapter 1.5 - अर्ह योग की प्रेरणा	29
अर्ह मन्त्र का अर्थ	29
अर्ह मन्त्र की निष्पत्ति	29
अर्ह मन्त्र ध्यान का फल	30
अर्ह सिद्धात्मा का बीज मन्त्र	31
अर्ह में तीन तत्त्व	31
अर्ह का तीन नाड़ी में प्रयोग	32
ओं अर्ह भी तत्त्व हैं	33
अहं से अर्ह	33



UNIT 2: विधि एवं लाभ	35
Chapter 2.1 - अर्हः पाँच चरण प्रक्रिया	36
हमारा ध्येय क्या?	36
अर्ह - पाँच चरण प्रक्रिया	36
पंच परमेष्ठी/पंच सोपान	38
पाँच केन्द्र	39
बैठने के मूलभूत आसन	40
सुखासन	40
अर्ध पद्मासन	40
पूर्ण पद्मासन	40
खड़े होने के मूलभूत आसन	41
खड़गासन	41
मूलभूत मुद्राएँ	41
प्रार्थना मुद्रा	41
ज्ञान मुद्रा	41
Chapter 2.2 - Activation	42
पंच मुद्रा विस्तार	42
पंच नमस्कार मुद्रा	43
अरिहंत मुद्रा (Mudra for Power)	43
सिद्ध मुद्रा(Mudra for Energy)	45
आचार्य मुद्रा(Mudra for Activity)	47
उपाध्याय मुद्रा (Mudra for Creativity)	48
साधु मुद्रा(Mudra for Evolution)	50
Panch Mudra Chart	52
Chapter 2.3 - Relaxation	53
प्राणायाम	53
कायोत्सर्ग	53



कायोत्सर्ग की विधि	54
Chapter 2.4 - Healing	56
अर्ह मंत्र शक्ति	56
ध्वनि एवं नाद	56
दीर्घ नाद (उत्कृष्ट नाद)	57
मध्यम नाद	57
हल्का नाद	58
Chapter 2.5 - Awareness	59
त्रयशुद्धि	59
त्रयशुद्धि की विधि	60
आध्यात्मिक भावनाएँ	61
Chapter 2.6 - Motivation	64
सकारात्मक संपुष्टि Positive Affirmations	64
विश्व कल्याणी 'अर्ह' योग प्रार्थना	66
UNIT - 3: प्राणायाम	67
Chapter 3.1 - प्राणायाम	68
प्राण	68
प्राणों के भेद	69
प्राण सभी जीवों में है	69
Chapter 3.2 - श्वास के प्रकार	70
नाड़ी श्वास	70
उदर श्वास या उदरीय श्वसन	70
श्वासोच्छ्वास और जीवन की लम्बाई	70
दस प्राण	72



Chapter 3.3 - प्राणायाम के भेदों का अभ्यास और विधि	73
श्वासोच्छ्वास क्या?	74
स्थूल प्राणायाम के भेद	76
ऐश्वर्य प्राणायाम	76
भस्त्रिका	77
पंच केंद्र प्राणायाम	77
कायोत्सर्ग	78
Chapter 3.4 - नाड़ी के प्रकार एवं महत्व	79
शरीर की तीन मुख्य नाड़ियाँ और नाड़ी शुद्धि	79
नाड़ी शुद्धि के फायदे	80
सगुण स्वर और निर्गुण स्वर	80
शुक्ल पक्ष में सुबह के शुभ स्वर	81
कृष्ण पक्ष में सुबह के शुभ स्वर	82
सुबह उठते हुए क्या ध्यान रखना?	83
शुक्ल पक्ष में विपरीत स्वर चलने से हानि	83
प्रयास से चन्द्र नाड़ी को चलाया जा सकता है	85
सूर्य नाड़ी भी कुछ कामों में शुभ है	86
भोजन करने के बाद बायीं करवट लेटने के फ़ायदे	88
बाएँ स्वर में कार्य करने से मनोवांछित सभी कार्यों की पूर्ति	89
अच्छी नींद लेने के उपाय	89
UNIT 4: अर्ह अष्टाङ्ग योग	91
Chapter 4.1 - अर्ह अष्टाङ्ग योग - परिचय	92
योग के आठ अंग	92
ध्यान के आठ अंग	92
ध्याता	92
ध्यान	93
ध्येय	94



ध्यान का फल	94
ध्यान का विषय	94
ध्यान का क्षेत्र	95
ध्यान का काल	95
ध्यान की रीति	95

Chapter 4.2 - ध्यान के अष्टाङ्ग- ध्याता, ध्यान, फल 96

ध्यान के आठ अङ्ग	96
ध्याता	96
ध्यान योग के स्वामी	97
ध्याता योगी की योग्यता	97
मोक्षमार्ग का साधक ध्याता	98
ध्यान सभी के लिए है	98
ध्यान	99
ध्यान का कार्य	99
ध्यान की परिभाषा	99
ध्यान का फल	100
ध्यान के बिना संस्कार नाश नहीं	100
ध्यान के तात्कालिक एवं त्रैकालिक फल	100
ध्यान से शरीर स्वस्थता	101

Chapter 4.3 - ध्येय, ध्यान का विषय 102

ध्येय	102
ध्येय का लक्षण	102
ध्येय के चार प्रकार	102
सरल ध्येय विधि	103
अक्षर ध्येय का फल	103
आत्मा ही ध्येय	104
चतुर्विध भावना ध्येय	104



जीव पदार्थ ध्येय	105
आनन्द केन्द्र पर ध्यान	106
कण्ठ स्थान एवं ज्ञान केन्द्र पर ध्येय	106
अहं बीजाक्षर पद	106
ध्यान का विषय	107
ध्यान योग्य समस्त जगत्	107
कैसा द्रव्य चिन्तन करें	108
Chapter 4.4 - ध्यान का क्षेत्र, काल, रीति	109
ध्यान के योग्य क्षेत्र	109
क्षेत्र विशेषता	109
ऋतु के साथ क्षेत्र विशेष	109
बाधा रहित स्थान	109
प्रारंभिक योगी के लिए ही क्षेत्र नियम	109
ध्यान का काल	110
ध्यान कब करें	110
ध्यान के लिए प्रयत्न कब?	111
ध्यान रीति	111
ध्यान के लिए आसन	111
ध्यान के लिए उचित रीति	112
अष्टांगयोग का फल	112
UNIT - 5: ध्यान का सैद्धांतिक और वैज्ञानिक अध्ययन	113
Chapter 5.1 - ध्यान का सैद्धांतिक अध्ययन	114
धर्म ध्यान	114
अहं ध्यान	115
पिण्डस्थ ध्यान विधि	115
पदस्थ ध्यान विधि	116



Chapter 5.2 - ध्यान का वैज्ञानिक अध्ययन	117
मन कैसा होता है?	117
ध्यान का मन पर प्रभाव	118
Chapter 5.3 - क्या करें और क्या न करें	119
DO'S (करें)	119
DON'T (क्या न करें)	119
Chapter 5.4 - अर्ह योग और आहार	123
कधं भुंजेज्ज- कैसे भोजन करें?	123
हितभुक् हितकारी भोजन	123
मितभुक् परिमित भोजन	124
शाकाहार का शाब्दिक अर्थ	124
Albert Einstein के विचार	125
क्या अण्डे शाकाहारी भोजन है?	125
क्या जंकफूड, फास्टफूड शाकाहारी हैं?	126
डॉक्टरों की स्पष्ट घोषणा	126
जैन होटल vs शुद्ध रसोईघर	127
पेय पदार्थ किससे युक्त?	127
बच्चों को अप्रत्यक्ष रूप से मांसाहार कैसे परोसा जा रहा है?	127
शाकाहारी विकल्प	128
प्राकृतिक दूध vs सिंथेटिक दूध	128
शतपदगामी वामपार्श्वशायी	129
अभ्यास प्रश्न	130



UNIT 1: अहं ध्यान योग



Chapter 1.1 – अर्ह ध्यान योग – एक परिचय

जैन योग की प्राचीनता

जैन योग का इतिहास बहुत प्राचीन है। जैन परंपरा के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव जी प्रथम योगी के रूप में सामने आते हैं। ऋषभदेव जी ने ध्यान-योग की ऐसी कला सिखाई कि चौबीसवें तीर्थंकर महावीर तक सभी ने उन्हीं आसनों और ध्यान-मुद्राओं का पालन किया। मोहन जोड़ो और हड़प्पा में जिन योगी जिन की यह प्रतिमा प्राप्त हुई है उनकी पहचान ऋषभदेव के रूप में की गयी है। मुहरों पर कायोत्सर्ग मुद्रा में योगी का चित्र प्राप्त हुआ है, यह कायोत्सर्ग की मुद्रा जैन योग की प्रमुख विशेषता है। इतिहास गवाह है कि आज तक प्राचीन से प्राचीन और नयी से नयी जितनी भी जैन प्रतिमाएँ मिलती हैं वे योगी मुद्रा में ही मिलती हैं। या तो वे खडगासन मुद्रा की हैं या फिर वे पद्मासन मुद्रा की हैं। खडगासन में ही कायोत्सर्ग मुद्रा उसका एक विशिष्ट रूप है। जैन संस्कृति में कायोत्सर्ग योग की एक प्रमुख विधा है। नासाग्र दृष्टि और शुक्ल ध्यान की अंतिम अवस्था का साक्षात् रूप इन प्रतिमाओं में देखने को सहज ही मिलता है। इन परम योगी वीतरागी सौम्य मुद्रा के दर्शन कर प्रत्येक जीव परम शांति का अनुभव करता है और इसी प्रकार योगी बन कर आत्मानुभूति को प्राप्त करना चाहता है।

अंतिम तीर्थंकर महावीर ने भी ऋषभ देव की योग साधना पद्धति को आगे बढ़ाते हुए साधना की। उनका अनुकरण करते हुए उन्हीं के समान आज तक नग्न दिगंबर साधना करके लाखों

योगी आचार्य और साधु हो गए जिन्होंने जैन योग साधना के द्वारा आत्मानुभूति को प्राप्त किया।

कायोत्सर्ग की मुद्रा जैन योग की प्रमुख विशेषता है।

तीर्थंकरों की परम्परा आचार्यों तक

आचार्य शुभचंद्र ने ज्ञानार्णव नामक ग्रंथ में आसन-प्राणायाम तथा ध्यान की सभी प्रक्रियाओं का सूक्ष्म विवेचन किया। आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा प्रवर्तित प्रेक्षाध्यान एवं जीवन-विज्ञान योग प्रचलित है। योग की विधि **सामयिक** तथा **प्रतिक्रमण** आज जैन उपासना में प्रचलित है। वर्तमान में आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा प्रवर्तित प्रेक्षाध्यान एवं जैन योग देश में तथा विदेशों में काफी लोकप्रिय हो रहा है।

जैन आचार्यों ने योग एवं ध्यान विषयक हजारों ग्रंथों का प्रणयन प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में किया है। मुख्य ग्रंथों का वर्णन तालिका में किया है।

आचार्य	प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में ग्रंथ
आचार्य कुन्दकुन्द	पञ्च परमागम, अष्टपाहुड
आचार्य पूज्यपाद स्वामी	इष्टोपदेश, समाधितंत्र, सर्वार्थसिद्धि
आचार्य गुणभद्र	आत्मानुशासन
आचार्य शुभचन्द्र	ज्ञानार्णव
आचार्य नागसेन	तत्त्वानुशासन



भारतीय योग विद्या में श्रमण संस्कृति का योगदान इतना अधिक है कि उसकी उपेक्षा करके भारतीय योग विद्या के प्राण को नहीं समझा जा सकता। पाठ्यक्रमों में योग को पढ़ाते समय श्रमण संस्कृति की योग विद्या का ज्ञान आवश्यक है।

ध्यान की विशेषता

जैन आगम के अनुसार ध्यान सिर्फ सकारात्मक ही नहीं होता वह नकारात्मक भी होता है। दरअसल आत्मा को जैन परंपरा ज्ञान दर्शन स्वभावी मानती है। ज्ञान आत्मा का आत्मभूत लक्षण है, किसी भी स्थिति में आत्मा और ज्ञान अलग नहीं होते और वह ज्ञान ही ध्यान है, चूंकि आत्मा ज्ञान के बिना नहीं अतः वह ध्यान के बिना भी नहीं। पढ़कर आश्चर्य लगेगा कि कोई ध्यान मुद्रा में न बैठा हो तब भी ध्यान में रहता है। जैन आगम कहता है मनुष्य हर पल ध्यान में ही रहता है, ध्यान के बिना वह रह नहीं सकता। ध्यान दो प्रकार के हैं नकारात्मक और सकारात्मक। **आर्तध्यान और रौद्रध्यान नकारात्मक ध्यान हैं तथा धर्म ध्यान और शुक्लध्यान सकारात्मक ध्यान हैं।** मनुष्य प्रायः नकारात्मक ध्यान में रहता है इसलिए दुखी है, उसे यदि सच्चा सुख चाहिए तो उसे सकारात्मक ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। वह चाहे तो धर्म ध्यान से शुभ की तरफ आगे बढ़ सकता है और शुक्ल ध्यान को प्राप्त कर निर्विकल्प दशा को प्राप्त कर सकता है। इस विषय की गहरी चर्चा जैन शास्त्रों में मिलती है।



जैनयोग के विविध आयाम

एक साधारण गृहस्थ और मुनि की साधना पद्धति में भी तीर्थंकरों ने भेद किये हैं। साधक जब घर में रहता है तो उसकी साधना अलग प्रकार की है और जब वह गृह त्याग कर सन्यास ले लेता है तब उसकी साधना अधिक कठोर हो जाती है। आज भी जैन मुनियों की साधना और उनकी दिनचर्या उल्लेखनीय है।

अर्ह ध्यान योग

ध्यान योग अनादिकाल से चली आ रही एक प्राचीन जैन पद्धति है। संतत्व से सिद्धत्व तक के अविराम यात्री, दिगम्बरत्वरूपी आकाश में विचरण करने वाले, गतिशील साधक, राष्ट्र, समाज एवं प्राणी मात्र के लिए चिंतनशील, साक्षात् तीर्थंकर सम भगवन्त, **अग्रणी संत शिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज** के परम प्रभावक शिष्य अभीक्षणज्ञानोपयोगी **प्राकृत मर्मज्ञ, अर्ह ध्यान योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर जी महाराज** ने जन समुदाय की पीड़ा और कष्ट को समझकर, **अहं से अर्ह** की यात्रा हैतू उनका सही मार्गदर्शन करने के लिए **अर्ह ध्यान योग** की प्रक्रिया से सब का परिचय कराया।





बालयोगी मुनि श्री प्रणम्य सागर जी महाराज संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं में निपुण हैं। अपनी 26 साल की साधना के अनुभव और प्राचीन ग्रंथों के मर्म को समझकर मुनि श्री ने मानवमात्र के प्रति करुणा और वात्सल्य से परिपूर्ण होकर **अर्ह ध्यान योग** के माध्यम से एक ऐसा उपहार हमें दिया है जिससे हम अपने आप से बात कर पाते हैं। अपने अर्ह का अनुभव करने का प्रयास करते हैं, अपने अर्ह को कम करते हैं।



मुनि श्री कहते हैं- **हर प्राणीमात्र में अर्ह बनने का**

सामर्थ्य है। परन्तु अर्ह की परतों से प्राणीमात्र ने अपनी ऊर्जा को ढक रखा है। जब हम अर्ह ध्यान योग के माध्यम से अपनी अर्ह ऊर्जा से जुड़ जाते हैं तो हमारा शरीर, हमारा मन स्वतः ही स्वस्थ हो जाता है। अर्ह ध्यान योग का हमारे मानसपटल पर इतना गहरा प्रभाव पड़ता है कि वह हमारे पूर्व गलत संस्कारों को मिटा कर नए सकारात्मक संस्कार बना देते हैं।

अर्ह ध्यान योग साहित्य

मुनि श्री ने अर्ह ध्यान योग की शैली आज की आधुनिक पीढ़ी को ध्यान में रखते हुए वर्तमान समय के परिपेक्ष के अनुसार दी है। यह पद्यती वैज्ञानिक तर्क पर भी खरी उतरती है। इस योग पद्धति का व्याख्यान करने हेतु मुनि श्री ने निम्नलिखित पुस्तकें रची हैं

1. अर्ह ध्यान योग: यह अर्ह ध्यान योग की प्रारंभिक एवं समग्र पुस्तक है। इसमें मुनि श्री ने अर्ह ध्यान योग के विभिन्न चरणों को, उनके लाभ, इतिहास एवं पूर्वाचार्यों के सन्दर्भ और वैज्ञानिक वैधता जैसे विविध विषयों को शामिल किया है।

2. अर्ह प्रणायाम: आचार्य शुभचन्द्र महाराज के ग्रन्थ ज्ञानार्णव पर मुनि श्री के प्रवचनों पर आधारित यह पुस्तक प्राणायाम का सूक्ष्मता से अध्ययन कराती है। इसमें प्राणायाम एवं उसके प्रकार के साथ में **स्वर विज्ञान** का भी वर्णन है; यह ऐसी विद्या है जिसके के माध्यम से हम अपने जीवन के हर पहलू - सांसारिक लाभ, भावात्मक,



स्वास्थ्य, मानसिक, आध्यात्मिक को नियंत्रित कर सकते हैं।

3. **अर्ह अष्टांग-योग शतकम्:** पूज्य मुनि श्री द्वारा संस्कृत में रचित शतक **अर्ह ध्यान योग** की सैद्धांतिक व्याख्या करता है। इसमें लुप्तप्रायः ध्यान के अष्टाङ्गों का वर्णन किया है।

4. **अर्ह दोहावली:** पूज्य मुनि श्री द्वारा रचित हिंदी भाषा के दोहे आध्यात्मिकता से ओतप्रोत हैं। इन दोहों को पढ़ने से, गुनगुनाने से एक आंतरिक शांति की अनुभूति होती है। इसमें अर्ह ध्यान योग के विभिन्न पहलू को बहुत ही सुन्दर और सरस दोहों के रूप में व्याख्यान है।

अर्ह चिज्ज्योति है

अर्ह ही चिज्ज्योति है, अर्ह अर्हत् सिद्ध ।
अर्ह साधु मंगलं, अर्ह लोक प्रसिद्ध ॥

अर्ह पूर्ण वर्णमाला है

अर्ह से सब स्वर सधें, व्यंजन होवें व्यक्त ।
अर्ह पूरण ज्ञानमय करता चित्त सशक्त ॥

अर्ह से रोग मुक्ति

अर्ह के सन्नाद से, भागें रोग विकार ।
चित्त शान्ति शक्ति भरे, जागें शुद्ध विचार ॥



Chapter 1.2 – योग का अर्थ

‘योग’ शब्द संस्कृत की ‘युज’ धातु से निसृत है जिसका अर्थ है-

- जोड़ना
- मिलाना
- योग करना या संयमन करना है।

भारतीय मनीषियों, दार्शनिकों व भाष्यकारों ने प्रसंगानुसार ‘योग’ के नाना प्रकार के अर्थ किए हैं। जैसे-ध्यान, समाधि, चिन्तानिराध, स्वान्तनिग्रह, अन्तः संल्लीनता, समत्वबुद्धि, स्वास्थ्य, आत्मध्यान, शुद्धोपयोग, चित्तवृत्तिनिरोध इत्यादि।



गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सिखाया कि ‘योगः कर्मसु कौशलम्’ अर्थात् कर्मों की कुशलता ही योग है। जो जीवन को संतुलित बनाए वह योग कला ही है।



अर्ह अष्टांगयोग में मुनि श्री ने योग को समुच्चयार्थ में निबद्ध करते हुए कहा

**संसारं योजयेद् योगो,
योगो मोक्षोऽपि योजयेत्।**

**योगः स्यान् माध्यमस्तस्मात्
द्वयोः संसृतिमोक्षयोः ॥**

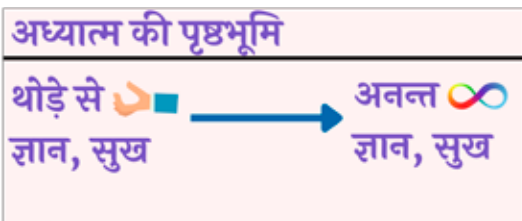
॥ अर्ह-अष्टाङ्गयोग - 7 ॥

योग मानव को संसार से जोड़ देता है और मोक्ष से भी जोड़ देता है। इसी कारण योग संसार और मोक्ष दोनों को जोड़ने का माध्यम है।

योग एक आध्यात्मिक प्रक्रिया

योग एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जिसमें शरीर, मन और आत्मा को एक साथ लाने (योग) का काम होता है। ‘योग’ शब्द तथा इसकी प्रक्रिया और धारणा हिन्दू धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म में ध्यान प्रक्रिया से सम्बन्धित है। अध्यात्म ज्ञान की पृष्ठभूमि अपनी जीवत्व शक्ति की पूर्णता में निहित है। हम जो जानते हैं, जो देखते हैं, जो सुख पाते हैं ये सभी अल्प अल्प हैं। पूर्ण नहीं हैं। थोड़े-थोड़े हैं। इसीलिए मनुष्य को कभी अपने से तृप्ति नहीं होती है। **अध्यात्म ज्ञान हमें पूर्णता की ओर ले चलता है। जो है उसे अनन्त में परिवर्तित करने की कला सिखाता है। थोड़े से ज्ञान को अनन्त ज्ञान तक, थोड़े से सुख को अनन्त सुख तक कैसे ले जाएँ ये ही सीखना सिखाना अध्यात्म की पृष्ठभूमि है।**





- योग एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है।
- योग में शरीर, मन और आत्मा को एक साथ लाने का काम होता है।
- शरीर, वचन और मन की क्रिया को भी तीर्थकरों ने योग कहा 

कर्म, आत्मा और अर्ह योग

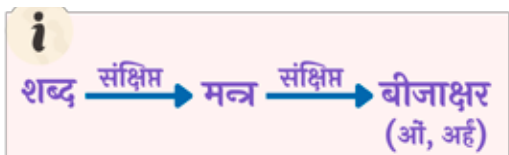
संसार का प्रत्येक प्राणी आत्मा, मन और शरीर आदि का एक संयोगी घटक है। प्रकृति का नियम है कि प्रत्येक कार्य कारण से ही होता है। Cause and effect का सिद्धान्त वैज्ञानिक मान्य है। हर इंसान को या जगत के प्रत्येक प्राणी मात्र को शरीर आदि मिलते हैं उनका निर्माण वह प्राणी स्वयं अपने से करता है। **आत्मा स्वयं शरीर निर्माण का प्रमुख स्रोत है।** जीवन इसी चेतना प्राण की देन है। स्वयं किए हुए शुभाशुभ कर्म परमाणुओं का जो आत्मा से बंधन हो जाता है उसी के सहयोग से आत्मा अनेक तरह के शरीर, मन, वचन आदि की उत्पत्ति कर लेता है जो कि जीवन संचालन में उपयोगी है।

संयोग/ योग अनादि (eternal beginning less time) से है, जिससे जो चीज बनती है; उसी की विपरीत प्रक्रिया से वही चीज विघटित होती है। **आत्मा ने शरीर आदि की रचना की है, तो आत्मा ही उस शरीर आदि से मुक्त होने की प्रक्रिया प्रारम्भ करता है।** यही कारण है कि तीर्थकरों ने शरीर, वचन और मन की क्रिया को भी योग कहा है। उसके विपरीत इन क्रियाओं को शनैः शनैः रोकने और सूक्ष्म कर देने का नाम भी योग कहा है। यही कारण है 'योग' उतना ही प्राचीन शब्द है जितना 'आत्मा'।

'योग' का मतलब केवल शरीर संचालन और शारीरिक स्वास्थ्य समझना अधूरा ज्ञान है। योग का सम्बन्ध चित्तवृत्ति को रोकने से है, यह समझना भी पूर्णज्ञान नहीं अपितु बहुत कुछ ज्ञान से है। योग का सम्बन्ध अपने पूर्व अर्जित कर्मों और संस्कारों से छुटकारा प्राप्त करके आत्मा को पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण शक्ति का अनुभव कराने से है, यह समझना योग को परिपूर्ण समझना है। इसलिए तीर्थकरों ने योग को ध्यान और ध्यान को योग कहा है।

ब्रह्माण्ड में अनेक जीवनी शक्तियाँ विद्यमान हैं उनमें से आत्मा की ज्ञान शक्ति तक पहुँचाने वाली और उसे जाग्रत करने वाली एक **शब्द** शक्ति है। जिस शब्द शक्ति से ही अपना क्या और अपने से भिन्न (foreign matter) क्या है, यह ज्ञान हो जाता है। उसी शब्द शक्ति को ऋषियों मुनियों ने अपनी साधना से अनुभव करके और संक्षिप्त करके जो शक्ति सम्पन्न शब्द निर्मित किए हैं वे ही **मन्त्र** कहलाते हैं। मन्त्रों को भी संक्षिप्त करके जिनमें सभी मन्त्र शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं, उन्हें **बीजाक्षर** कहते हैं। ऐसे ही बीजाक्षर मन्त्र ओं, अर्ह आदि हैं। यह मन्त्र आत्मा के ज्ञान स्तर (consciousness level) को बढ़ाकर उसे परिपूर्ण परमात्मा बना देते हैं।





अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने का ध्येय इसीलिए सबसे महत्वपूर्ण और सर्वोत्तम लक्ष्य है जो परमात्मा बन गए हैं और बनने के मार्ग पर निकले हैं वे ही परमेष्ठी कहलाते हैं। इन परमेष्ठियों की शक्ति अलौकिक होती है। इन परमेष्ठियों की संख्या संक्षेप से पाँच है।

अर्हं ध्यान योग में पाँच परमेष्ठियों की शक्तियों और शुद्धियों को स्वयं में समाहित करने की सैद्धान्तिक पद्धति का कुछ संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। अपने ही अन्दर पड़ी सुषुप्त शक्ति को जाग्रत करके उसे अनुभव करना और अपने conscious level को इतना बढ़ाना कि वह पूर्ण ज्ञान (enlightenment) को प्राप्त हो, यही इस पद्धति का मुख्य ध्येय है।

परमेष्ठी	
➤	जो परमात्मा बन गए हैं
➤	जो परमात्मा बनने के मार्ग पर निकले हैं
➤	परमेष्ठी 5 होते हैं



योग शब्द की व्युत्पत्ति

युज्धातो-योजनेऽस्त्यर्थो
योगः सर्वेषु जायते।
मनोवाक्काययोगैश्च
यतः कर्मसमाश्रयः ॥

॥ अर्हं-अष्टाङ्गयोग-6 ॥

‘योग’ शब्द ‘युज्’ धातु से बना है। ‘युज्’ धातु जोड़ने, मिलाने या योग करने या संयमन करने के अर्थ में आती है। जो जोड़ देता है वह योग है-यह योग का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है। योग-योग सर्वेषु-संसार सभी जीवों में जायते-रहता है या उत्पन्न होता है। योग सभी जीवों में पाया जाता है। प्रत्येक जीव में संसारदशा में योग निश्चय रूप से रहता है। मन से, वचन से और काय से जो कर्म किया जाता है वह ही योग है। तीन प्रकार के योगों से मनोयोग, वचनयोग, काययोग शुभ-अशुभ कर्मों का समान रूप से आश्रय होता है या कर्म आते हैं। इसीलिए सभी प्राणी मन से वचन से या काय से कर्म करते हुए योगयुक्त होते हैं।

संसार और मोक्ष का कारण योग

संसारं योजयेद् योगो,
योगो मोक्षेऽपि योजयेत्।
योगः स्यान् माध्यमस्तस्मात्
द्वयोः संसृतिमोक्षयोः ॥

॥ अर्हं-अष्टाङ्गयोग-7 ॥

मन, वचन और काय की चेष्टाओं से जो योग निरंतर हो रहा है वो हमारे लिए संसार बढ़ाने वाला भी है और वही योग हमें अंततः योग से मुक्त करता है।

जो चलता रहता है वह संसार है। जो संसार में (जीवों को) जोड़ दे, वह योग है क्योंकि मन से, वचन से, काय से जो कर्म होता है उससे योग होता है। इसलिए जीव संसार में बँधे या निमग्न रहते हैं।

मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को इस तरह करने



से शुभ कर्मों का योग हो, अंततः उस पथ पर ले जाती है जहाँ योग ही रुक जाए। अतः जो **मोक्ष** में भी (जीवों को) जोड़ दे, वह योग है।

इस श्लोक का भाव है **अशुभ और शुभ कर्मों के कारण योग मनुष्यों को संसार में और मोक्ष में जोड़ देता है।**

जो चित्त संसार के राग-द्वेष-मोह आदि विषयों में बाहर ही घूमता रहता है। वह चित्त ही सर्वतः सभी ओर से या पूर्णरूप से, बन्ध-बन्धन को आप्रोति प्राप्त कर लेता है। वही सभी और से बन्ध जाता है एवं सर्व दुःखतः संसार के दुःखों से घिरा रहता है। **उसी चित्त के अन्तरंग से जुड़ने पर सभी दुःखों से मुक्ति हो जाती है।**

ध्यानयोग

ध्यानयोग शब्द ध्यान और योग दो शब्दों के मेल से निष्पन्न है। इनमें ध्यान शब्द भ्वादिगण की धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। श्री धातु का अर्थ विचार विमर्श चिन्तन, एकाग्रता आदि है। योग शब्द रुधादिगण की युजिर् (योगे) दिवादिगण को युज (समाधी) एवं चुरादिगण की गुज (संयमन) धातुओं से निष्पन्न होता है। **योग** शब्द के अनेक अर्थ हैं- जुड़ना, समाधि, संयमन सम्बन्ध, निष्पन्नता आदि। इनमें **ध्यान** का अर्थ एकाग्रता और योग का अर्थ जुड़ना या मेल / सम्बन्ध सर्वत्र प्रसिद्ध रही है। इस प्रकार **ध्यानयोग** का अर्थ हुआ- एकाग्रता का सम्बन्ध या एकाग्रता को निष्पन्नता।

भारतीय संस्कृति में योग-ध्यान की महत्ता है। **योग में ही ध्यान है और ध्यान में ही योग है।**

जैसा कि अर्ह अष्टांगयोग में लिखा है।

ध्यानञ्च साधनं यस्माद्

योजने चित्तमात्मनि।

तस्माद् ध्यानाद् भवेद् योग,

इत्यपि घटते स्फुटम्॥

॥ अर्ह-अष्टाङ्गयोग-10 ॥

अर्थात् ध्यान ही योग का साधन है जिससे चित्त आत्मा में जुड़ जाता है इसीलिए ध्यान से योग होता है, यह बात स्पष्ट घटित होती है। तीर्थकरों ने आत्मिक धर्म को महत्ता दी है। आत्मा का धर्म आत्मा का समत्व सुख है। वही चारित्र है। आत्मा के विचारों एवं भावों में जब मोह, क्षोभ, आकुलता का पूर्ण अमात्र हो जाए तो वही आत्मा की चरम अवस्था है।

वास्तव में **योग का साधन, सिद्धि का कारण ध्यान एवं ध्यान ही है।** जिससे चित्त आत्मा में जुड़ जाता है। जैसा कि पुज्यपाद स्वामी ने 'सर्वार्थसिद्धि' में कहा है- '**चित्तविक्षेपत्यागो ध्यान**' (चित्त के विक्षेप का त्याग ध्यान है)। अर्थात् जब चित्त ध्यान के कारण आत्मा में लीन हो जाता है तभी निश्चय से योग होता है। इस प्रकार भी स्पष्ट रूप से घटते सिद्ध होता है कि ध्यान से ही योग होता है।



स्व-पर उपकारी विद्या

यह अध्यात्म विद्या ही वास्तव में स्व और पर का उपकार करने वाली है जिन्होंने अपना उद्धार किया वे स्व का उपकार करके सदैव के लिए शुद्ध आत्मिक आनन्द में निमग्न हो गए। उनका उपकार कि वे तीर्थंकर सदृश जीव हमको शिक्षा भी दे गए। जिस विद्या से उन्होंने अपना उपकार किया वह विद्या छिपाई नहीं, हमें भी सिखाई है। अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्धमान भगवान के उपदेश श्री गौतमगणधर ने सुने और वह ज्ञान अनेक ऋषि मुनियों से होता हुआ आज भी हमारे पास उपलब्ध हुआ है। जो शुद्ध आत्मा अपने आत्मिक ज्ञान, आनन्द में निमग्न है वही सिद्ध पुरुष हैं। वही **परमात्मा** कहलाते हैं। आत्मा की परम-उत्कृष्ट अवस्था ही परमात्मा है। वह परमात्मा कोई एक नहीं है किन्तु अनन्त आत्माएं अपना उद्धार करके परमात्मा बन गई हैं। उनमें श्रद्धा, आस्था विश्वास रखना ही सम्यकदर्शन है। जो अपनी दृष्टि को समीचीन (Right) बनाकर उन्हीं जैसा बनने के लिए पुरुषार्थ करता है वह सम्यग्दृष्टि जीव है। समीचीन (शुद्ध, सही) श्रद्धा के बिना किसी कार्य का प्रारम्भ नहीं हो सकता है। आत्म शुद्धि के इस मार्ग पर चलने के लिए उन सिद्ध-अनन्त आत्माओं पर विश्वास होना नितान्त आवश्यक है। महापुरुषों के प्रदत्त ज्ञान का लाभ हम तभी उठा सकते हैं जब उस ज्ञान को न केवल हम मस्तिष्क में धार लें अपितु उस ज्ञान को ग्रहण करने में हमारे

अन्दर विश्वास के साथ विनय भी हो।

परमात्मा

- आत्मा की परम-उत्कृष्ट अवस्था
- परमात्मा एक नहीं है किन्तु अनन्त होती हैं



‘विद्या तभी फल देती है जब वह विनय के साथ ग्रहण की गई हो।’ विश्वास और विनय ये दो गुण (quality) ही हमारे व्यक्तित्व के रूपान्तरण में सहायक हैं। आओ, हम भी इस विद्या से अपना उपकार करें, अध्यात्मिकता को ग्रहण करने के लिए ही मंगलाचरण णमोकार महामन्त्र से प्रारम्भ होता है। ऐसी विद्या जिसने कुत्ते को देव बनाया, बैल को श्रीराम बनाया, नाग-नागिनी को धरणेन्द्र- पद्मावती बनाया, राजा श्रेणिक को तीर्थंकर बनाने की नियति दी।



Chapter 1.3 – योग के आठ अंग की ज्ञात परम्परा

योग के अष्टाङ्गों का परिचय

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा-
ध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥

महर्षि पतंजलि ने योग को 'चित्त की वृत्तियों के निरोध' (योगः चित्तवृत्तिनिरोधः) के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंने 'योगसूत्र' नाम से योगसूत्रों का एक संकलन किया जिसमें उन्होंने पूर्ण कल्याण तथा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शुद्धि के लिए अष्टांग योग (आठ अंगों वाले योग) का एक मार्ग विस्तार से बताया है।



अष्टांग शब्द दो शब्द से मिलकर बना है जिसमें पहले शब्द “अष्ट” का अर्थ आठ है और दूसरे अंग शब्द का अर्थ “अंग” है। अष्टांग योग को आठ अलग-अलग चरणों वाला मार्ग नहीं समझना चाहिए; यह आठ आयामों वाला मार्ग है जिसमें आठों आयामों का अभ्यास एक साथ किया जाता है। योग के ये आठ अंग हैं:

१) यम, २) नियम, ३) आसन, ४) प्राणायाम, ५) प्रत्याहार, ६) धारणा ७) ध्यान ८) समाधि

यम

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरग्रहाः यमा ॥

सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, यह पांच यम हैं। यही पांच महाव्रत हैं, जितना अधिक आप इनका पालन करते हो उतना अधिक इनका प्रभाव होने लगता है।

अहिंसा

अहिंसाप्रतिष्ठायांतत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥

-पातंजलयोगदर्शन 2/35

शब्दों से, विचारों से और कर्मों से किसी को अकारण हानि नहीं पहुँचाना अर्थात् अहिंसा से प्रतिष्ठित हो जाने पर उस योगी के पास वैरभाव छूट जाता है।

यदि आप अहिंसा में स्थापित होते हो, तब आपकी उपस्थिति मात्र में ही दूसरे जीव हिंसा त्याग देते हैं। कोई आपके ऊपर हमला भी करने आए पर जैसे ही वह आपके निकट आते हैं तो आपकी अहिंसक तरंगों के प्रभाव से ही वह हिंसा त्याग देंगे। जैन धर्म को फैलाने वाले तीर्थंकर भगवान महावीर ने अहिंसा पर बड़ा जोर दिया, ऐसा भी कहा जाता है कि जहाँ भी महावीर जाते, उनके आसपास मीलों तक जंगली जानवर भी हिंसा त्याग देते थे। पतंजलि



कहते हैं, अहिंसा में प्रतिष्ठित होने से आपके सानिध्य में भी वैर और हिंसा नहीं रह जाता है।

अहिंसा से प्रतिष्ठित हो जाने पर

- ▶ शब्दों से, विचारों से और कर्मों से किसी को अकारण हानि नहीं पहुँचाना
- ▶ वैरभाव छूट जाना
- ▶ उपस्थिति मात्र में ही दूसरे जीव हिंसा त्याग देते हैं



सत्य

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥

-पातंजलयोगदर्शन 2/36

विचारों में सत्यता, परम-सत्य में स्थित रहना, जैसा विचार मन में है वैसा ही प्रामाणिक बातें वाणी से बोलना अर्थात् सत्य से प्रतिष्ठित (वितर्क शून्यता स्थिर) हो जाने पर उस साधक में क्रियाओं और उनके फलों की आश्रयता आ जाती है। अर्थात् जब साधक सत्य की साधना में प्रतिष्ठित हो जाता है तब उसके किए गए कर्म उत्तम फल देने वाले होते हैं और इस सत्य आचरण का प्रभाव अन्य प्राणियों पर कल्याणकारी होता है।

सत्य में स्थित होने से आपके कर्म में सिद्धि आती है। आप जो भी काम करते हो उसका फल मिलने लगता है। कई बार लोग बहुत मेहनत करते हैं पर फिर भी उन्हें कोई परिणाम नहीं मिलता है, क्योंकि उनके भीतर कोई सत्य

चेतना का भाव नहीं होता है। जब हमारे भीतर सत्य शुद्ध चैतन्य होता है तब किसी भी कर्म का फल तुरंत ही मिलने लगता है, कार्य में सफलता प्राप्त होती है।

सत्य मात्र शब्दों का नहीं है। सत्य चैतन्य का गुण है। यदि आप झूठ भी बोल रहे होते हो और यह सीधा सीधा कह सकते हो कि मैं झूठ बोल रहा हूँ, तब वह भी सत्य है। जब भी आप झूठ बोलते हो तो देखोगे कि तुम्हारी चेतना तितर-बितर होती है, उसमें कुछ ताकत नहीं होती।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्, जो व्यक्ति सत्य के लिए प्रतिबद्ध है, जो अपनी चेतना के अस्तित्व के प्रति निष्ठावान है, उनके लिए सफलता बड़ी आसानी से मिल जाती है, सफलता उनके पीछे आती है। ऐसा नहीं है कि उनको कभी असफलता नहीं मिलती, कभी असफल हो भी सकते हैं परन्तु अंततः सफलता ही मिलती है।

सत्यमेव जयते, हमारे देश में यही कहते आए हैं कि सत्य की ही विजय होती है। कभी यदि ऐसा लगता भी है कि सत्य परास्त हो रहा है तो भी अंततः सत्य ही जीतता है।

सत्य से प्रतिष्ठित हो जाने पर

- ▶ विचारों में सत्यता, जैसा विचार मन में है वैसा ही प्रामाणिक बातें वाणी से बोलना
- ▶ कर्म उत्तम फल देने वाले होते हैं
- ▶ आपके कर्म में सिद्धि आती है।



अस्तेय

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥

-पातंजलयोगदर्शन 2/37

अस्तेय अर्थात् चोर-प्रवृत्ति का न होना अर्थात् अस्तेय के प्रतिष्ठित हो जाने पर सभी रत्नों की उपस्थिति हो जाती है।

सत्य और अहिंसा के बाद **तीसरा यम है अस्तेय**, अर्थात् चोरी नहीं करना। आप किसी को देखकर कहो कि अरे, काश मेरी आवाज भी उनके जैसे होती, ऐसी इच्छामात्र से ही आप उनकी आवाज चोरी कर चुके हो। आपको किसी सुन्दर महिला या पुरुष को देखकर ऐसी इच्छा उठती है कि काश, मैं भी उनके जैसे दिखता होता, इसी इच्छामात्र से आप चोरी कर ही चुके होते हो। दूसरों को देखकर इस तरह उठी इच्छाओं से ईर्ष्या बढ़ती है। लोग चोरी क्यों करते हैं? क्योंकि उन्हें अपने लिए कुछ चाहिए होता है।

अस्तेय के पालन से ईर्ष्या समाप्त हो जाती है। लोग किसी की मुस्कराहट से लेकर प्रसन्नता, खेल खिलोनों से लेकर साधना की प्रक्रियाओं तक तरह तरह की चीजों को चोरी करते हैं। ऐसी चीजें काम भी नहीं करती, जो लोग चोरी करते हैं वो गरीब ही रहते हैं। यदि आप अस्तेय में पूरी निष्ठा से प्रतिबद्ध रहते हो तब उसका प्रभाव होता है, सर्व रत्नो उपलब्धि, सभी तरह के धन आपको प्राप्त होते हैं, सभी तरह की सम्पन्नता आपको मिलती है।

चोरी करने का थोड़ा सा भी भाव आपको गरीब

बना कर रख सकता है। क्या आप यह समझ रहे हो? अधिकतर समय गरीबी स्वयं निर्मित ही होती है। जितना हो सके उतना समेट लेने का ओछापन आपके भाग्य को मिट्टी में मिला देता है। अस्तेय, चोरी नहीं करने से सभी सम्पन्नता आती ही है।

अस्तेय से प्रतिष्ठित हो जाने पर

- ▶ अस्तेय के पालन से ईर्ष्या समाप्त हो जाती है।
- ▶ सर्व रत्नो उपलब्धि, सभी तरह की सम्पन्नता आपको मिलती है।



ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥

-पातंजलयोगदर्शन 2/38

ब्रह्मचर्य दो अर्थ हैं:

- चेतना को ब्रह्म के ज्ञान में स्थिर करना
- सभी इन्द्रिय जनित सुखों में संयम बरतना

अर्थात् ब्रह्मचर्य के प्रतिष्ठित हो जाने पर वीर्य (सामर्थ्य) का लाभ होता है। ब्रह्मचर्य से आपके भीतर बल आता है। ब्रह्मचर्य का थोड़ा और गहरा अर्थ है - ब्रह्मन अर्थात् अनंत चैतन्य और ब्रह्मचर्य अर्थात् अनंत चैतन्य में रहना, अपने सच्चे विशाल स्वरूप को जानना। स्वयं को केवल शरीर न जानकर अपने अनंत चैतन्य



और प्रकाश पुंज जैसे स्वरूप को जानना ब्रह्मचर्य है। ऐसा होने से ब्रह्मचर्य स्वतः ही घटता है।

क्या आप यह समझ रहे हो? जब आप गहरे ध्यान में होते हो तब आपको ऐसा नहीं लगता कि आप साठ सत्तर किलो के भारी शरीर हो, आपको हल्का महसूस होता है जैसे आप पंख जैसे हलके हो। गहरे ध्यान में आपको शरीर का भान नहीं रहता है। जितना आप प्रफुल्लित होते हो, जितना आप अनंत चैतन्य के साथ तादात्म्य में होते हो, उतना आपको शरीर और उसके तनाव का पता नहीं रहता। वह ब्रह्मचर्य है।

चैतन्य के अनंतता का भाव और उसमें रमन करने से बड़ी ताकत और उत्साह मिलता है। कोई व्यक्ति यदि बहुत संकुचित सोच का हो, केवल यही सोचता रहे कि वो किसके साथ सम्भोग कर सकता है, आप देखोगे उनका ऊर्जा का स्तर बहुत नीचे होता है। वह बड़े कुंठित, जड़ और अनाकर्षक होते हैं। उनके चारो तरफ भी ऐसी भारी नकारात्मक तरंगों का आवरण बन जाता है जिसमें न कोई उत्साह होता है न ही कोई ताकत।

ब्रह्मचर्य से प्रतिष्ठित हो जाने पर

- वीर्य (सामर्थ्य) का लाभ होता है।
- भीतर बल आता है।
- ब्रह्मचर्य अर्थात अनंत चैतन्य में रहना




अपरिग्रह

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः ॥

-पातंजलयोगदर्शन 2/ 39

अपरिग्रह का अर्थ आवश्यकता से अधिक संचय नहीं करना और दूसरों की वस्तुओं की इच्छा नहीं करना अर्थात अपरिग्रह स्थिर होने पर (बहुत, वर्तमान और भविष्य के) जन्मों तथा उनके प्रकार का संज्ञान होता है।

जब आप संचय नहीं करते हो तब आपको पिछले जन्मों का और अलग अलग प्रजातियों का भी ज्ञान मिलने लगता है। आपके भीतर के संवाद में स्पष्टता आती है। क्या आप समझ रहे हो? जब कोई व्यक्ति केवल यही रट लगा के बैठा हो कि 'मुझे और चाहिए, मुझे और चाहिए' तब आप देखोगे कि वह भयग्रस्त होता है और जीवन की अनंतता से अनभिज्ञ रहता है। यह जीवन युगों युगों से चला आ रहा है और आगे भी चलता ही रहेगा। अपरिग्रह, संचय न करने का सीधा अर्थ है, अपने ऊपर विश्वास हो अपनी सामर्थ्य पर विश्वास होना और अपने स्वयं के स्वरूप का ज्ञान। जैसे यदि आपको रोटी बनाना आता है तब आप सात दिन के लिए रोटी इकट्ठा बना कर नहीं रखते, वह सड़ जाती हैं। एक चीन की कहावत है, जो आप बांटते हो वह बढ़ता है, जो आप फैलाते जाते हो, वह आपके पास और अधिक हो जाता है और जो आप पकड़ कर रखते हो वह आप खो ही बैठते हो। जितना आप सबके लिए बिखेरते हो उतना वो आपके पास बढ़ता जाता है।

जो लोग बहुत डरे हुए होते हैं वही बड़े कंजूस



होते हैं, जिन्हें अपने सामर्थ्य का भी कुछ अता-पता नहीं होता है। जो बड़े स्वार्थी और कंजूस होते हैं वही अधिक संचय करते हैं।

जब भी आप लोगों को कुछ देते हो, तब आपको कुछ न कुछ मिलता है, कुछ दुआएं मिलती ही हैं। यदि आप बहुत दुखी हो तो जरूरतमंदों को कुछ दान करो, आप पाओगे कि तुम्हारी चेतना में एक बदलाव आता है।

ऐसे वस्तुओं का संचय नहीं करना, स्वीकार नहीं करना अपरिग्रह है। परिग्रह है हमेशा लेते ही रहना, कौन मुझे क्या दे सकता है, यह देखते रहना परिग्रह है। आप कभी यह प्रयोग कर के देखो, कुछ दिनों के लिए किसी से कुछ भी ग्रहण मत करो, आप पाओगे कि चेतना में एक बदलाव आ जाता है। समाज में ऐसा पूरी तरह संभव नहीं है परन्तु कुछ लोग इसका अति अभ्यास भी करते हैं। आपको अति नहीं करनी है पर यह जागरूकता बनाए रखनी है।

यम को हम सिद्धांत या सामाजिक नैतिक कोड भी कह सकते हैं। यह ज्ञान महानतम है क्योंकि यह किसी भी समय, किसी भी स्थान पर और किसी भी मनुष्य पर बिना अपवाद के लागू होता है। अधिकतर नियम किसी स्थान और समय विशेष एवं विशेष व्यक्तियों या समूहों पर ही लागू होते हैं, सबके लिए नहीं होते। परन्तु यह पांच यम सार्वभौमिक हैं।

नियम

शौचसंतोषतपः

स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

- पातंजलयोगदर्शन 2/32

पांच यम के बाद महर्षि पतंजलि पांच नियम की चर्चा करते हैं, पाँच व्यक्तिगत नैतिकता। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान - नियम कहे जाते हैं।

अपरिग्रह से प्रतिष्ठित हो जाने पर

- भीतर के संवाद में स्पष्टता आती है।
- अपनी सामर्थ्य पर विश्वास होना
- स्वयं के स्वरूप का ज्ञान



शौच - शरीर और मन की शुद्धि

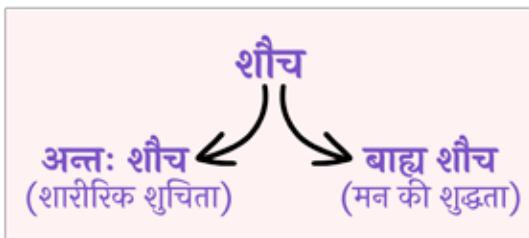
शौच अर्थात् शुचिता, दो तरह के शौच को परिभाषित किया गया है। पहला है **शारीरिक शुचिता** - अपने आप को साफ़ रखना। कुछ लोग तो नहाते भी नहीं हैं, कुछ इत्र लगाकर ही अपना काम चला लेते हैं। शरीर के बाहर और भीतर, दोनों तरफ पानी का बहाव होना ही चाहिए। आपको प्रचुर मात्रा में पानी पीना चाहिए जिससे वह पानी आपके शारीरिक तंत्रों से होकर निकले और उन्हें शुद्ध करे। शरीर के लिए पानी सबसे बड़ा शोधक है, शुद्ध करने वाला है।

इसके बाद अपना वातावरण भी साफ़ होना चाहिए। एक बार यदि आपको गंदे रहने की आदत हो तो आपको गंदगी में भी कुछ गलत नहीं लगता। ज्यादातर कच्ची बस्तियों में आप देखोगे कि उन्हें गन्दगी, गोबर, कीचड़ इस सब का आभास भी नहीं होता है। उन्हें इसकी इस



कदर आदत हो चुकी होती है कि उन्हें यह पता भी नहीं चलता, उन्हें ठीक ही लगता है। शौच – शारीरिक शुद्धता अत्यंत आवश्यक है। इसके बाद **मनस की शुद्धता**, मन को साफ़ शुद्ध रखना।

अन्तः शौच, बाह्य शौच – अंदर और बाहर दोनों तरह की शुद्धता को बनाये रखना, शरीर और मन को तनाव और अशुद्धियों से मुक्त कर लेना ही शौच है।



संतोष – संतुष्ट और प्रसन्न रहना

तृप्त और प्रसन्न रहना दूसरा नियम है। प्रसन्न रहना भी एक आदत है, दृष्टिकोण है। यदि आपको दुखी रहने की आदत है तो सब अच्छी परिस्थितियों में भी आप दुखी और चिड़चिड़े रह सकते हो, संसार में आपको कुछ भी प्रसन्न नहीं कर सकता। क्या आप यह समझ रहे हो? **अपने श्वास का भी आनंद लेने का अभ्यास करना शुरू करो।**

जब आप खुश होते हो तब क्या होता है? जब मुस्कुराते हो तब क्या होता है? आपके चेहरे की सारी मांसपेशियां शिथिल होती हैं, आपको मुक्ति, उत्साह और विश्राम की अनुभूति होती है। और यदि आप मुँह लटका कर दुखी रहने की आदत डाल लेते हो तो चेहरा और उसकी

मांसपेशियां भी वैसे ही ढल जाती हैं। फिर जैसे भी परिस्थितियां हो, आप दुखी बने रह सकते हो।

संतोष एक अभ्यास है। प्रसन्न रहना एक अभ्यास है। बेशर्त खुश रहना एक अभ्यास है। जो भी हो, तुम्हारी मुस्कुराहट बनाये रखो, क्या ही होगा, सब कुछ तो एक दिन खत्म हो ही जाने वाला है। इस क्षण मुस्कुराओ, कुछ नहीं तो अपनी श्वास का ही आनंद लो। कम से कम आप खुशी से श्वास ले सकते हो, कोई तुम्हारी नाक तो पकड़ के बंद नहीं कर सकता। आप मुक्त हो।

संतोष एक यम है, प्रसन्नता को बनाये रखना एक यम है। ऐसा क्या है जिसके लिए आप दुखी हो रहे हो, आपके करोड़ों रुपये डूब गए, तो क्या? आप इसके लिए दुखी हो, पर एक दिन तो यह शरीर भी तुमसे छूट ही जाने वाला है, जिससे आप उन करोड़ों रुपयों का आनंद लेने वाले थे। न जाने कितने लोग आये और चले गए। आप किस बात के लिए दुखी हो?

आपको अभी ही प्रसन्न होना होगा। तुम्हारी प्रसन्नता की ताकत ही इस बात से पता चलती है कि परिस्थितियां कितनी विपरीत हैं। सब कुछ बहुत अच्छा अच्छा हो और आप मुस्कुराओ, तब उस मुस्कुराहट का कुछ मोल नहीं है। परन्तु कैसी भी परिस्थिति हो और आप कहो, तो क्या? दुनिया इधर से उधर हो जाए, मैं दुखी होने वाला नहीं हूँ, मैं अपनी मुस्कुराहट नहीं खोने वाला हूँ। ऐसा बल ही संतोष है।

शौच और संतोष एक ही साथ आते हैं। बिना



शौच के संतोष भी नहीं हो सकता है। हमेशा लोगों के साथ ही लगे रहना, हमेशा दूसरों को गले ही लगाते रहना, ऐसा करते रहने से आप अपनी ऊर्जा को अपने में समाहित नहीं रख पाते हो। हमेशा किसी न किसी के साथ रहने से स्वयं के होने का एहसास ही नहीं होता है। आपको पता ही नहीं चलता कि आप कौन हो? कुछ समय के लिए ही सही, अपने स्वयं के साथ रहना सीखो। ऐसे ही आपको अपनी कमजोरियों और शक्तियों का पता चलने लगेगा। यही शौच है एवं इसके साथ ही संतोष और प्रसन्नता संभव है।

तप - स्वयं से अनुशासित रहना

तपस से सहनशक्ति बढ़ती है। जो भी आपके लिए आसान नहीं है, उससे भी इच्छापूर्वक निकलना ही तपसः है। यह आपको बड़ी मजबूती प्रदान करता है। परन्तु लोग इसे भी खींच खींच कर दिखावे के लिए प्रयोग करने लगते हैं और स्वयं को प्रताड़ित करते हैं।

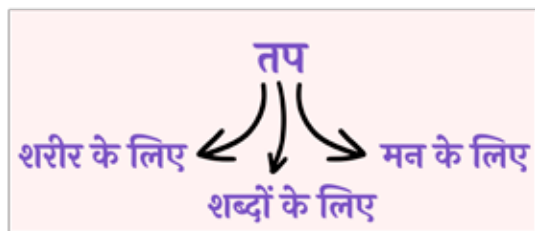
तपसः भी तीन तरह के होते हैं।

शरीर के लिए तपस, शब्दों के लिए, मन के लिए।

तपसः से क्या होता है? हम क्यों तप से गुजरते हैं?

तप हमारे तंत्र प्रणालियों की शुद्धि कर देता है और उन्हें बल प्रदान करता है। तप का उद्देश्य ही है, शुद्धता और शक्ति। परन्तु तपस से किसी भी व्यक्ति में बड़ा अहंकार उपज सकता है, दुर्भाग्यवश लोग सोचते हैं कि वो बहुत अधिक

तपसः कर के कुछ महान काम कर रहे हैं।



यदि किसी को बहुत लम्बे समय तक व्रत रखना पड़ रहा है तो इसका अर्थ है कि उनके भीतर बहुत सारी अशुद्धता रही होगी। तपसः को जरूरत से ज्यादा गौरवान्वित करना अहंकार का मार्ग है। मैंने बहुत पूजा पाठ किया है, बहुत ध्यान किया है, इस तरह की सोच हमें अहंकार से भर देती है।

इसीलिए तपसः के तुरंत बाद है, स्वाध्याय, स्वयं का अध्ययन। यह देखना की हम व्रत क्यों कर रहे हैं, केवल दिखावे और किसी से होड़ करने मात्र के लिए?

स्वाध्याय - आत्मचिंतन करना

स्वाध्याय को लोग किताबों और शास्त्रों का अध्ययन समझ बैठे हैं। यह बात ठीक भी है पर स्वाध्याय केवल यही नहीं है। शास्त्र और ग्रंथों से स्वाध्याय में सहायता मिल सकती है परन्तु बिना किसी आध्यात्मिक अनुभव के वह सब अर्थहीन है।

स्वाध्याय है, अपने किसी भी कार्य के पीछे के उद्देश्य को देखना। अधिकतर हम जो स्वयं चाहते हैं, उन सबके पीछे नहीं होते हैं, बल्कि हम दूसरे लोगों के अनुसार चीजों के पीछे होते हैं। दूसरे लोग इसके बारे में क्या कहेंगे, सोचेंगे,



करेंगे, उसके अनुसार हम अपनी प्राथमिकताएं तय करते हैं।

अधिकतर आपको स्वयं ही नहीं पता होता की आपको क्या चाहिए, क्योंकि तुमने अपने भीतर कभी देखा ही नहीं होता। आप आते जाते विचारों, इच्छाओं और भावनाओं से बहकते जाते हो। तुम्हारी इच्छाएं भी तुम्हारी स्वयं की नहीं होती हैं।

स्वाध्याय का अर्थ है अपने आप को देखना, परखना। तुमने शरीर को शुद्ध कर लिया परन्तु क्या आप शरीर मात्र ही हो? तुमने मन को हल्का कर लिया, और क्या आप मन ही हो? क्या आप विचार हो? क्या आप भाव हो? आप हो क्या?

यह स्वाध्याय आपको आगे बढ़ाकर पूरे अज्ञात ब्रह्माण्ड से जोड़ देता है। स्वाध्याय तपः से एक कदम और आगे ले जाता है। स्वाध्याय मन के दुःख और क्लेशों को भी दूर कर देता है।

ईश्वर-प्रणिधान - ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण

ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है ईश्वरीय तत्त्व के लिए समर्पण का भाव। इस पूरे ब्रह्माण्ड के सन्दर्भ में जीवन को देखो, यह अनंत ब्रह्माण्ड करोड़ों करोड़ों वर्षों से है और करोड़ों वर्षों तक बना रहेगा। यह चेतना जो इस जगत का आधार है, उस ईश्वरीय तत्त्व को जानना और उसको समर्पण करना ही ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वरीय चेतना जो क्लेशों, कर्मों और उनके कर्मफलों से मुक्त है, जो प्रेम-स्वरूप, पूर्ण जागृत और सचिदानंद है, उसको समर्पण करना ही पांचवा नियम है।

ईश्वर को अपने आप से अलग देखना पहला कदम है। समर्पण के लिए भी दो की आवश्यकता होती है, भगवान और भक्त। यह मानो कि ईश्वर ही सब कुछ है और आप कुछ भी नहीं हो।

ईश्वर सर्वशक्तिमान और सर्वोपरि है और मैं कुछ भी नहीं हूँ। इस कुछ नहीं होने के भाव से ही एक हो सकते हैं। तब यह अनुभूति होती है कि सब कुछ आप ही हो, जो भी सब मैं हूँ, वह भी आप ही हो।

यह शरीर और पूरा ब्रह्माण्ड आपका ही है। यह मन भी आपका ही है। यह मन और इसके सारे द्वन्द्व भी आपके ही हैं। यह मन और इसकी सुंदरता भी आपकी ही है। इस तरह का समर्पण भी एक प्रक्रिया है जो आपको पुनः स्वयं में स्थापित कर सकती है। ईश्वर प्रणिधान ध्यान में आपको आनंद से भर देता है और समाधि की अवस्था में ले आता है।

दीप-धूप, फल-फूल अर्पण करने में कुछ विशेष नहीं, अपने शरीर के एक एक अंग का अर्पण करो। जीवन के प्रत्येक क्षण का अर्पण करो। हर श्वास, हर विचार, अच्छा बुरा, जैसा भी, सब कुछ अर्पण कर दो। अपनी सभी वासनाओं, दुर्गुणों और जो भी आप अपने आप में बुरा समझते हो, उस सब को भी अर्पण कर दो। **जो भी आपके में नकारात्मक है और जो भी सकारात्मक है, उस सभी को अर्पित कर दो। नकारात्मक को अर्पण कर देने से आप मुक्त हो जाओगे और सकारात्मक को अर्पण कर देने से आपको अहंकार नहीं होगा।** आपके गुण आपको अभिमानी बना सकते हैं। गुणों



से आपको ऐसे लग सकता है जैसे आप कुछ विशेष हो। अवगुण अथवा तुम्हारी कमियां आपको नीचे धकेलती हैं और आपको अपने बारे में बुरा लगता है। यदि आपको अपने बारे में बुरा लगने लगे, ईश्वर से सामीप्य न लगे, तब कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपको उस जुड़ाव को महसूस करवा सके।

तपसः, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान - यही क्रिया योग है। यह सब करते हुए भी ऐसा भाव रखो कि आप यह नहीं कर रहे हो, शांत साक्षी बनो। बाहर की प्रक्रियाओं के बावजूद आप अपने भीतर इस सबसे अछूते हो।

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान पांच नियम हैं।

आसन

योग की स्थिति या मुद्रा द्वारा शरीरिक नियंत्रण

एक स्थिर और आरामदायक मुद्रा जो मानसिक संतुलन प्राप्त करने में मदद करती है

- योगासनों द्वारा शरीरिक नियंत्रण
- आसन शरीर को साधने का तरीका है।

यम और नियम की चर्चा के बाद महर्षि पतंजलि आसन को परिभाषित करते हुए कहते हैं-

सूत्र 46:

स्थिरसुखमासनम् ॥४६॥

आसन क्या है? स्थिरसुखमासनम् - जो स्थिर

भी हो और सुखदायक अर्थात् आरामदायक भी हो, वह आसन है। अधिकतर जब हम आराम से बैठे होते हैं तो स्थिर नहीं होते और यदि स्थिर और सीधे बैठते हैं तो तने हुए होते हैं जिसमें आराम नहीं होता। आसन अर्थात् जब आप स्थिर भी हो और सुखपूर्वक उस अवस्था में हो।

पतंजलि ने स्थिर तथा सुखपूर्वक बैठने की क्रिया को आसन कहा है, पतंजलि के योगसूत्र में ने आसनों के नाम नहीं गिनाए हैं। लेकिन परवर्ती विचारकों ने अनेक आसनों की कल्पना की है। वास्तव में आसन हठयोग का एक मुख्य विषय ही है। इनसे सम्बंधित 'हठयोगप्रदीपिका' 'घेरण्ड संहिता' तथा 'योगाशिखोपनिषद्' में विस्तार से वर्णन मिलता है।

सूत्र 47 :

प्रयत्नशैथिल्यानन्त-समापत्तिभ्याम् ॥४७॥

आसन में सबसे महत्वपूर्ण है, प्रयत्न को शिथिल छोड़ना। शरीर को महसूस करते हुए एवं प्रयत्न को ढीला छोड़ते हुए अनंतता का अनुभव करना, अनंतसमापत्तिभ्याम् - स्वयं को अनंत आकाश से एक महसूस करना ही आसन है। जब भी आप जागरूकतापूर्वक आसन करते हो तब क्या होता है? आपको आसन के अभ्यास से अपने भीतर हल्कापन और खाली आकाश जैसे लगता है। प्रयत्नशैथिल्य - प्रयत्न को छोड़ना महत्वपूर्ण है। जब आप सुखपूर्वक किसी आसन में बैठते हो तब जो बैठने मात्र का आनंद है वही सुख है।

सूत्र 48 :

ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥४८॥



आसन आपके भीतर के द्वन्द और झंझवातों पर चोट करता है। यह आपके अंदर से संघर्ष और द्वन्द को उखाड़ फेंकता है। **द्वन्द्व अनभिघातः**, जब भी आप उलझन में हो, मन द्वन्द की स्थिति में हो तब आसन करने बैठो, आप पाओगे कि आसन करने से तुरंत ही मन में स्पष्टता आने लगती है। आसन का प्रभाव है कि यह आपके अंदर के संदेह, उलझन और द्वन्द को मिटा देता है।

प्राणायाम

योगी श्वास, श्वास-लेने सम्बन्धी खास तकनीकों द्वारा शरीर की शुद्धि

सांस का विस्तार और नियंत्रण करना

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोगतिविच्छेदः प्राणायामः॥ पातंजलयोगदर्शन 2/49॥

उस (आसन) के सिद्ध होने पर श्वास और प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है।

योग की यथेष्ट भूमिका के लिए नाड़ी साधन और उनके जागरण के लिए किया जाने वाला श्वास और प्रश्वास का नियमन प्राणायाम है। प्राणायाम मन की चंचलता और विक्षुब्धता पर विजय प्राप्त करने के लिए बहुत सहायक है।

सूत्र 49 :

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोगतिविच्छेदः प्राणायामः॥४९॥

आसन की स्थिति में, श्वास के प्राकृतिक प्रवाह को अवरोधित कर जागरूकतापूर्वक गिनती के साथ लम्बी, गहरी और सूक्ष्मतर श्वास लेते हुए

अपना ध्यान अलग अलग हिस्सों पर लेकर जाना प्राणायाम है। प्राणायाम में श्वास के प्राकृतिक प्रवाह को अवरोधित करते हैं क्योंकि तुम्हारा प्राकृतिक प्रवाह बिलकुल भी प्राकृतिक नहीं रह गया होता है। हमने अपने स्वभाव में न रहकर अपनी श्वास को इतना अप्राकृतिक बना लिया है कि उसको प्राकृतिक लय में लेकर आने के लिए, गति-विच्छेद, जागरूकता पूर्वक उसके प्रवाह को विशेष गिनती से जगह जगह पर अवरोधित करते हैं।

सूत्र 50:

वाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिः देशकालसङ्ख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः॥५०॥

इस एक सूत्र में ही सभी तरह के प्राणायामों को एक साथ वर्णित कर दिया गया है। श्वास लें, रोके और छोड़ें फिर रोके और इस तरह अलग अलग गिनतियों के साथ शरीर के अलग अलग हिस्सों पर अपना ध्यान लेकर जाने की प्रक्रिया ही प्राणायाम है। इस एक ही सूत्र में सब तरह के प्राणायाम समाहित हैं।

सूत्र 51:

वाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः॥५१॥

एक और चौथे तरह का प्राणायाम है जो स्वतः होता है। जब सारे विचारों और धारणाओं से मन मुक्त होता है तब प्राकृतिक रूप से एक प्राणायाम शुरू होता है। इससे मन की सभी अशुद्धियाँ मिट जाती हैं। यह चौथी तरह का प्राणायाम है जो बिना प्रयास के होता है और जैसे जैसे गहराई आती है वैसे वैसे यह अपना एक निश्चित प्रवाह बना लेता है।



प्राणायाम को स्वयं से नहीं, बल्कि उचित देखरेख और निर्देशन में ही सीखना चाहिए। अब प्राणायाम करने का प्रभाव क्या होता है?

सूत्र 52:

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥५२॥

प्राणायाम से आपके प्रकाश स्वरूप पर पड़ा हुआ आवरण क्षीण होने लगता है। आप ज्योति स्वरूप हो, प्रकाश हो पर आपको इसका भान ही नहीं होता क्योंकि उसके चारों तरफ एक गाढ़ा आवरण पड़ा हुआ है। प्राणायाम से यह आवरण क्षीण होते होते पारदर्शी होने लगता है और आप यह जान पाते हो की तुम्हारा स्वरूप क्या है? आप प्रकाश स्वरूप हो।

सूत्र 53:

धारणासु च योग्यता मनसः ॥५३॥

प्राणायाम का दूसरा लाभ यह है कि इसके अभ्यास से मन में शरीर के किसी एक बिंदु पर ठहरने की क्षमता आने लगती है। मन किसी एक वस्तु पर टिकने में सक्षम होने लगता है। यह एक तरह की संकल्प शक्ति है, प्राणायाम के बिना मन किसी संकल्प से बंधता ही नहीं, मन हमेशा ऐसे ही बिखरा बिखरा चलता आया है। परन्तु प्राणायाम से मन में एक स्पष्टता आती है और वह एक दिशा में गतिमान होने में सक्षम होने लगता है।

आप कभी अच्छे से प्राणायाम करके उठते हो तो पाते ही हो कि मन कहीं अधिक ठहरा हुआ, शांत और जागरूक होता है। उस अवस्था में आप शरीर के प्रति जागरूक रहते हो और

ध्यान में भी आसानी से उतर सकते हो।

प्रत्याहार

संवेदना वापस लेना या आशा, वचन आदि वापस लेना

दिमाग की शक्ति को बढ़ाने के लिए एक मानसिक तैयारी

इन्द्रियों को अंतर्मुखी करना महर्षि पतंजलि के अनुसार जो इन्द्रियां चित्त को चंचल कर रही हैं, उन इन्द्रियों का विषयों से हट कर एकाग्र हुए चित्त के स्वरूप का अनुकरण करना प्रत्याहार है। प्रत्याहार से इन्द्रियां वश में रहती हैं और उन पर पूर्ण विजय प्राप्त हो जाती है। अतः चित्त के निरुद्ध हो जाने पर इन्द्रियां भी उसी प्रकार निरुद्ध हो जाती हैं, जिस प्रकार रानी मधुमक्खी के एक स्थान पर रुक जाने पर अन्य मधुमक्खियां भी उसी स्थान पर रुक जाती हैं।

सूत्र 54:

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥५४॥

प्रायः मन बाहरी विषय वस्तुओं में रमा रहता है परन्तु जब आप ध्यान के दौरान मन को बाहरी वातावरण से समेट कर भीतर किसी वस्तु में अटका देते हो उसे ही प्रत्याहार कहते हैं। इसे मन के लिए एक वैकल्पिक आहार भी कह सकते हैं। एक ऐसा विकल्प जिस से मन भीतर की ओर आने लगे। जैसे जब आप ध्यान के उपरांत नाचते हो तो वह नृत्य एक प्रत्याहार ही है। मन को अंतर्मुखी करने के लिए, भीतर की यात्रा के लिए जो वैकल्पिक आहार है उसे



ही प्रत्याहार कहते हैं। प्रत्याहार ही मन, शरीर और इन्द्रियों को इकट्ठा कर उन्हें सम्पूर्ण और एकरूप कर देता है। आपको एक गहरे ध्यान के बाद यह अनुभव भी होता है कि आप पूर्ण हो और एकरूप हो। आपके भीतर एक उत्साह, प्रेम और ऊर्जा का उत्थान बना रहता है, यह प्रत्याहार का प्रभाव है।

धारणा

वस्तु पर एकाग्रता, अपने मन को वश में करना।

एक वस्तु और उसके क्षेत्र पर दिमाग की एकाग्रता।

मन को एकाग्रचित्त करके ध्येय विषय पर लगाना पड़ता है। किसी एक विषय को ध्यान में बनाए रखना।

अपने मन को अपनी इच्छा से अपने ही शरीर के अन्दर किसी एक स्थान में बांधने, रोकने या टिका देने को धारणा कहते हैं। वैसे तो शरीर में मन को टिकाने के मुख्य स्थान मस्तक, भ्रूमध्य, नाक का अग्रभाग, जिह्वा का अग्रभाग, कण्ठ, हृदय, नाभि आदि हैं परन्तु इनमें से सर्वोत्तम स्थान हृदय प्रदेश को माना गया है। हृदय प्रदेश का अभिप्राय शरीर के हृदय नामक अंग के स्थान से न हो कर छाती के बीचों बीच जो गड्ढा होता है उससे है।

जहां धारणा की जाती है वहीं ध्यान करने का विधान है। ध्यान के बाद समाधि के माध्यम से आत्मा प्रभु का दर्शन करता है और दर्शन वहीं हो सकता है जहां आत्मा और प्रभु दोनों

उपस्थित हों। प्रभु तो शरीर के अन्दर भी है और बाहर भी परन्तु आत्मा केवल शरीर के अन्दर ही विद्यमान हैं। इसलिए शरीर से बाहर धारणा नहीं करनी चाहिए।

निम्नलिखित कारणों से प्रायः हम मन को लम्बे समय तक एक स्थान पर नहीं टिका पाते

- मन जड़ है को भूले रहना
- भोजन में सात्विकता की कमी
- संसारिक पदार्थों व संसारिक-संबन्धों में मोह रहना
- ईश्वर कण – कण में व्याप्त है को भूले रहना
- बार-बार मन को टिकाकर रखने का संकल्प नहीं करना
- मन के शान्त भाव को भुलाकर उसे चंचल मानना



बहुत से योग साधक बिना धारणा बनाए ध्यान करते रहते हैं। जिससे मन की स्थिरता नहीं बन पाने से भी भटकाव अधिक होने लगता है। जितनी मात्रा में हमने योग के पहले पांच अंगों को सिद्ध किया होता है। उसी अनुपात में हमें धारणा में सफलता मिलती है। धारणा के महत्त्व व आवश्यकता को निम्नलिखित उदाहरण से समझाया जा सकता है। जिस तरह किसी लक्ष्य पर बन्दूक से निशाना साधने के लिए बन्दूक की स्थिरता परमावश्यक है। ठीक उसी तरह ईश्वर पर निशाना लगाने (ईश्वर को पाने) के लिए हमारे मन को एक स्थान पर टिका देना अति आवश्यक है।



ध्यान

जिसमें व्यक्ति अपनी चेतना बाह्य स्थल विशेष पर केंद्रित करता है।

सभी बाहरी वस्तुओं से दिमाग खींचने और इसे एक बिंदु पर ध्यान केंद्रित करने और उस पर ध्यान लगाना।

किसी एक स्थान पर या वस्तु पर निरन्तर मन स्थिर होना ही ध्यान है। जब ध्येय वस्तु का चिन्तन करते हुए चित्त तद्रूप हो जाता है तो उसे ध्यान कहते हैं। पूर्ण ध्यान की स्थिति में किसी अन्य वस्तु का ज्ञान अथवा उसकी स्मृति चित्त में प्रविष्ट नहीं होती।

ध्यान योग के उपर्युक्त आठ अंगा में सर्व विशिष्ट होने से भी ध्यान को योग कहा जाता है।

समाधि

ध्यान की उच्च अवस्था को समाधि कहते हैं।

समाधि में व्यक्ति अपनी आत्मा से जुड़ता है। अपनी आत्मा से जुड़ना ब्राह्मण को समझना (शुद्ध चेतना) या भगवान का अहसास मानव जन्म की अंतिम उपलब्धि है।

यह चित्त की अवस्था है जिसमें चित्त ध्येय वस्तु के चिंतन में पूरी तरह लीन हो जाता है। योग दर्शन समाधि के द्वारा ही मोक्ष प्राप्ति को संभव मानता है।

समाधि की भी दो श्रेणियाँ हैं : सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात समाधि वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मितानुगत होती है। असम्प्रज्ञात में सात्विक, राजस और तामस सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है।

ध्यान करते-करते जब परोक्ष वस्तु का प्रत्यक्ष (दर्शन) होता है, उस प्रत्यक्ष को ही समाधि कहते हैं। जिस प्रकार आग में पड़ा कोयला अग्नि रूप हो जाता है और उसमें अग्नि के सभी गुण आ जाते हैं। उसी प्रकार समाधि में जीवात्मा में ईश्वर के सभी गुण प्रतिबिम्बित होने लगते हैं। जीवात्मा का मात्र एक प्रयोजन मुक्ति प्राप्ति है और योगी इस प्रयोजन को समाधि से पूर्ण करता है।

उपसंहार:- अब एक उदाहरण से यह समझाने का प्रयत्न करते हैं कि उस ईश्वर को प्राप्त करने में योगविद्या की क्या महानता है। आत्मा में ज्ञान की क्षमता को असीम मानते हुए (ईश्वर के मुकाबले आत्मा में ज्ञान की क्षमता सीमित ही है) एक कुषाग्र बुद्धि वाला व्यक्ति तभी 100 वर्षों में अध्ययन आदि के माध्यम से केवल कुछ विषयों में ही परांगत हो सकता है जबकि इस सृष्टि में अनगणित और अन्तहीन विषय हैं।

जैन ग्रंथों में प्रचलित अष्टाङ्ग योग को मान्यता

एक प्राचीन उल्लेख आचार्य पूज्यपाद (ई. 5वीं शती) का उनके द्वारा लिखित 'पंचमहागुरु भक्ति' में पाया जाता है जिसमें वह पंचपरमेष्ठी के गुणों का स्मरण प्रत्येक के पृथक पृथक विशेषण से करते हैं।

प्रातिहायैर्जिनान् सिद्धान्

गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः ।

पाठकान् विनयैः साधून्

योगाष्टभिः स्तुवे ॥११॥



अर्थात् जिनों की प्रातिहायों से, सिद्धों को अष्ट गुणों से, सूरियों (आचार्यों) की स्वमातृका (अष्ट प्रवचन मातृका) से पाठक (उपाध्याय) की विनय के अंगों से और साधुओं को योग के आठ अंगों से स्तुति: करता हूँ।

यहाँ योग के आठ अंगों से क्या तात्पर्य है? इसका स्पष्टीकरण तो आचार्य पूज्यपाद के भावों से ही हो सकता है। हाँ एक टीका जो आचार्य प्रभाचन्द्र जी की उपलब्ध है उसमें उन्होंने योग के उन्हीं आठ अंगों को लिया है

जो यम नियमादि के रूप में प्रचलित है। योग को ही ध्यान और ध्यान को ही योग मानने की जैनाचार्यों की अवधारणा भी स्पष्ट है जो कि एक प्राचीन श्लोक से स्पष्ट है- 'योगः समाधियन' इत्यादि।

योग का प्रयोजन भी अष्टांगों के माध्यम से समाधि तक ले जाने का है और ध्यान का भी प्रयोजन वही है। ध्यान योग के उपर्युक्त आठ अंग में सर्व विशिष्ट होने से भी ध्यान को योग कहा जाता है।

अहं अहं का नाशक

अहं भाव ही मोह है, भ्रम माया अज्ञान।
अहं नाशे अहं को, सत्य मिले सज्ज्ञान॥



Chapter 1.4 – योग की श्रमण परंपरा

भारतीय संस्कृति की प्राचीनतम संस्कृति श्रमण संस्कृति है। इतिहासविद् इस तथ्य को एकमत से स्वीकारते हैं। स्वयं के आत्म विकारों के विजेता 'जिन' हैं। ऐसे जिन अनादि से आत्म उत्थान के पथ पर अग्रसर होते आए हैं। उन जिनों के उपासक श्रमण, साधु और यथायोग्य ग्रहस्थ, श्रावक भी रहे हैं। **जिन, आर्हत हैं।** उनका मार्ग ही आर्हत धर्म या जैन धर्म है। इस धर्म में विश्व के प्राणिमात्र के कल्याण की भावना है। न केवल भावना किन्तु उन्हें आत्म उन्नति के पथ पर अग्रसर करने की सर्वांगीण पद्धति भी है। किसी जाति, सम्प्रदाय, रंग भेद के बिना सभी के लिए इस पद्धति से ध्यान ने आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है।

स्वयं के आत्म विकारों के विजेता
'जिन' हैं

जैन दर्शन में योग

जैन दर्शन में ध्यान की प्रक्रिया धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान के भेद से बहुत व्यवस्थित और सुदूर-लभ्य है। **प्राणी मात्र का कल्याण जिस तरह णमोकार महामन्त्र से है वैसे ही इसके संक्षिप्त रूप ओं, अर्ह से भी होता है,** ऐसा ध्यान के ग्रन्थ ज्ञानार्णव आदि में उल्लिखित है। ध्यान एक निवृत्ति परक प्रक्रिया है। ध्यान द्रव्यानुयोग की आध्यात्मिक प्रणाली है। द्रव्यानुयोग की पद्धति से पूर्व चरणानुयोग की आचरणात्मक

पद्धति भी आवश्यक है। इसी हेतु **जिनेन्द्र देव की वाणी प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग में विभाजित है।** ज्ञान इन चार अनुयोगों से ही सुव्यवस्थित होता है। **प्रथमानुयोग** से इतिहास की घटना जानी जाती है। **करणानुयोग** से सूक्ष्म आत्मिक भावों का आकलन होता है। **चरणानुयोग** में आचरण की पद्धति है। **द्रव्यानुयोग** में दुःख मुक्ति का प्रधान उपाय आत्म-परमात्मा का ध्यान है।

अनुयोग	विषय
प्रथमानुयोग	इतिहास की घटना जानी जाती है
करणानुयोग	सूक्ष्म आत्मिक भावों का आकलन होता है
चरणानुयोग	आचरण की पद्धति है
द्रव्यानुयोग	दुःख मुक्ति का प्रधान उपाय आत्म-परमात्मा का ध्यान है

जैन ध्यानयोग की पद्धति को आधुनिक ढंग से संवारा गया है और चारों अनुयोगों को ध्यान में रखकर अर्ह ध्यान योग के माध्यम से इसे सुव्यवस्थित एवं सर्वजन हिताय बनाया गया है। ध्यान तक पहुँचने से पहले कुछ चरणानुयोग की क्रिया आवश्यक है। लोग णमोकार के माध्यम से पंच परम आत्माओं को स्मरण तो करते हैं लेकिन क्रियाशीलता के अभाव में अद्भुत ऊर्जा का संचार महसूस नहीं कर पाते हैं। इस अभाव को ध्यान में रखकर 'पंच नमस्कार मुद्रा' पद्धति का आविष्करण हुआ। शरीर के पंच विशिष्ट केन्द्रों पर पंच महाशक्ति



का स्मरण करना और पंचम गति (मोक्ष) के हेतु आत्म आराधना करते हुए पंचभूतात्मक नश्वर देह से अपने को मुक्त करना, यही इस ध्यान योग का प्रयोजन है।

आचार्य पूज्यपाद का योग

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं

त्यजेदन्तरशेषतः ।

एष योगः समासेन

पूज्यपादेन प्रोच्यते ॥

॥ समाधितंत्र-17 ॥

इस प्रकार बहिर्वचनों को छोड़ करके अन्तरंग में सभी प्रकार के जल्पों को छोड़ दें। इस योग को संक्षेप रूप से आचार्य पूज्यपाद महाराज ने कहा है।

- साधर्मीजन, मित्र आदि के साथ बातचीत करने रूप प्रमुख वचन जालों को कृत, कारित, अनुमोदना रूप त्रिकोटि से रोक दें।
- उसके बाद अन्तरङ्ग वचन जल्पों को भी पूर्णरूप से शान्त कर दें।
- जैसे कि मैं चेतनावान हूँ, मैं दर्शनज्ञानमय हूँ, मैं अनाकुल स्वरूप हूँ, मैं अखण्ड पिण्ड हूँ फिर सभी ओर से गुप्ति में गुप्त होता हुआ समाधि मैं निष्ठा को प्राप्त होवे।
- यही योग परमात्मा के केवलज्ञान से लक्षित आत्मा के स्वरूप को दिखाने वाला प्रदीप है यह संक्षेप से जानना चाहिए।
- योग ध्यान है, समाधि है, बुद्धि का रोकना

है, चित्त का निग्रह है और अन्तरङ्ग में तल्लीनता है विद्वानों ने ये सब योग के अनेक अर्थ कहे हैं।

- कहीं समता बुद्धि का नाम योग है
- कहीं स्वास्थ्य में योग की प्रसिद्धि है।
- कहीं समाधि का नाम योग है।
- कहीं भेदज्ञान का नाम योग है,
- कहीं आत्मध्यान का नाम योग है।
- कहीं योग, जोड़ने के अर्थ में प्रयोग होता है
- कहीं शुद्धोपयोग का नाम योग है
- जो आत्मा पुरुष के आकार की है, योगी (गृह त्यागी) है, केवलज्ञान और केवलदर्शन से सहित है- ऐसी आत्मा का जो मुनि ध्यान करता है, वह पापों को दूर करने वाला निर्द्वन्द्वयोगी होता है।
- साम्य, स्वास्थ्य, समाधि योग, चिन्तानिरोध और शुद्धोपयोग इस प्रकार ये सब एकार्थ वाचक होते हैं।
- कहीं वचन व्यापार से रहित योगी होता है। कहा भी है- 'मौनव्रत में योगी अपनी आत्मा को योग में स्थित होकर लगाए।
- कहीं आत्मप्रदेशों के स्पन्दन का नाम योग है।
- कहीं अभावकाश, आतापन, वर्षायोग-इन त्रिकाल योग का नाम योग है
- 'युज् धातु समाधि अर्थ में होती है।' इस प्रकार धातु की निष्पत्ति से यहाँ योग शब्द



से वीतराग, निर्विकल्प समाधि का ग्रहण किया गया है।

- अथवा 'युज्' धातु योग अर्थ में होने पर अनन्त ज्ञानादि-रूप स्वशुद्धात्मा में लगना, परिणमन करना, योग शब्द से जानना चाहिए।

श्री वीरसेन आचार्य द्वारा सम्मत योग के अंग

ध्याता ध्येयोऽपि वा ध्यानं

फलं ध्यानस्य सूचितम्।

अङ्गं चतुर्विधं ज्ञेयं

वीरसेनार्यवाक्यतः ॥14॥

ध्याता, ध्येय, ध्यान और ध्यान का फल ये चार प्रकार के अंग आचार्य वीरसेन महाराज के वाक्य से या वचनों से जाने जाते हैं। श्री वीरसेन आचार्य ने योग के चार अङ्गों को इस प्रकार कहा है।

वे अंग हैं-

- (1) **ध्याता** जो ध्यान करता है, या जिसके द्वारा ध्यान किया जाता है अथवा योगी
- (2) **ध्येय**-जिसका ध्यान किया जाता है अथवा जहाँ योगी की चित्तवृत्ति सलग्न रहता है। ध्यान का लक्ष्य ध्येय होता है।
- (3) **ध्यान**- चित्त के विक्षेप का त्याग ध्यान है।
- (4) **ध्यानस्य फल**-ध्यान का परिणाम जो मोक्ष की प्राप्ति ही है।

योग के आठ अंग- एक अज्ञात पद्धति

अब यहाँ संक्षेप से योग के आठ अंगों को कहने के लिए यह उद्योग किया जा रहा है, जोकि कुछ भिन्न रीति से आठ अंग बताए गए हैं।

अन्य प्रकार से योग के आठ अङ्ग होते हैं उन्हें कहा जाता है -

योग के आठ अंग कहे हैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि परन्तु यहाँ पर योग के अन्य आठ अंग निरूपित हैं।

ध्याता, ध्यानं फलं ध्येयं

यस्य यत्र यदा यथा।

अष्टाङ्गं हि प्रबोद्धव्यं

ध्यानाभ्याससुकांक्षिणाम् ॥16॥

ध्याता, ध्यान, ध्यान का फल, ध्येय, ध्यान का विषय, ध्यान का स्थान, ध्यान का काल और ध्यान की विधि। इस प्रकार से ध्यान के अभ्यास की आकांक्षा करने वालों को योग के ये आठ अंग जानने चाहिए। सध्यान के लिए ही योग के ये अङ्ग सेवन करने योग्य हैं यह कहा जाता है।

यहाँ पर अन्य प्रकार से योग के आठ अंग प्रस्तुत किये जाते हैं

- **ध्याता** - ध्यान का कर्ता, ध्यान का साधक या योगी
- **ध्यानम्** - एकाग्र चिन्ता का रोकना ध्यान है अथवा चित्त की एकाग्रता। जो ध्येय के प्रांत होती है वही ध्यान है।



- **फलम्-ध्यान** का फल शुभ होता है क्योंकि उससे कर्मों की निर्जरा होती है।
- **ध्येयम्-ध्यान** करने योग्य या ध्यान का लक्ष्य ध्येय है। ध्येय प्रशस्त परिणाम का कारण या मोक्ष की प्राप्ति है।

ध्याता, ध्यानं फलं ध्येयं यस्य यत्र यदा यथा ।

इत्येतदत्र बोद्धव्यं ध्यातुकामेन योगिना ॥

-तत्त्वानुशासनम् 37

- यस्य जिस विषय (स्वामी) का ध्यान किया जाता है। **ध्यान का विषय** शुद्धात्मा या पंच परमेष्ठी हैं।
- यत्र **ध्यान का स्थान** या क्षेत्र यह पवित्र, एकान्त तथा सर्वधा ध्यान के योग्य होना चाहिए।
- यदा **ध्यान का समय** यह निश्चित नहीं है। जब योगी की ध्यानाकांक्षा होवे वही काल उपयुक्त है।

- यथा **ध्यान की विधि** या रीति कायोत्सर्ग, पर्यकासन या सुखासन करके नाक के अग्र भाग में दृष्टि पूर्वक जो ध्यान किया जाता है वही ध्यान की रीति या विधि है।

ध्यान के ये आठ अंग 'तत्त्वानुशासन' ग्रन्थ में कहे गये हैं। ध्याता, ध्यान, ध्यान का फल, ध्येय, जिसका ध्यान, जहाँ ध्यान, जब ध्यान और जैसे ध्यान इस प्रकार ये आठ अंग ध्यान की इच्छा करने वाले योगी को जानने चाहिए। इसलिए अष्टाङ्ग योग का यह वर्णन पूर्वाचार्य के क्रमानुसार होने से प्रामाणिक है।

योगाङ्गों में ध्यान का सर्वाधिक महत्त्व है जिसमें चित्त की एकाग्रता एतावत् घनिष्ट होती है कि जिससे अज्ञानान्धकार की समाप्ति व ज्ञानानन्द की प्राप्ति अवश्यंभावी है। ध्यान का निर्वाचन शतक प्रणेता मुनिवर ने क्रिया व कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण कारकों में किया है क्योंकि योगी की आत्मा स्वयं अपनी आत्मा को, अपनी आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा के लिए अपने आत्महेतु से, अपनी आत्मा में ध्याता होने से निश्चयनय की दृष्टि से ध्यान स्वरूप है।



Chapter 1.5 – अर्ह योग की प्रेरणा

अर्ह बीजाक्षर तत्त्वं
सर्वमन्त्रैकनायकम्।
ध्यायेदध्यात्मशास्त्रेषु,
प्रोक्तमेवविधं बुधैः ॥

॥अर्ह-अष्टाङ्गयोग-25 ॥

अर्ह यह बीजाक्षर है। यह तत्त्व है जो सभी मन्त्रों का एक नायक है अर्थात् सभी मन्त्रों में प्रमुख है। अध्यात्म शास्त्रों में गणधर आदि बुद्धिमान पुरुषों ने इस अर्ह को ध्यान करने के लिए इस प्रकार कहा है।

‘अर्ह यह मन्त्र’ बीजाक्षर तत्त्व साररूप है। बीजाक्षर के विषय में कहा गया है ‘हलो अर्थात् व्यंजन बीज कहे गये हैं तथा स्वर शक्ति माने गये हैं।’ अर्थात् सभी व्यंजन बीजसंज्ञक है और स्वर शक्तिरूप हैं। मन्त्र के बीजाक्षर-बीज और शक्ति के संयोग से होते हैं। बीज और स्वरों के संयोग से अर्ह भी बीजाक्षर मन्त्र है। यही मन्त्र साररूप ज्ञातव्य है। यह मन्त्र सभी मन्त्रों का एक नायक है अर्थात् सभी मन्त्रों में प्रमुख है। इसका ध्यान करना चाहिए।

बीजाक्षर → बीज + शक्ति
बीज = व्यंजन
शक्ति = स्वर



अर्ह मन्त्र का अर्थ
अकारादिहकारान्तं
रेफमध्यं सविन्दुकम्।
तदेवं परमं तत्त्वं,
यो जानाति स तत्त्ववित् ॥

॥अर्ह-अष्टाङ्गयोग-26 ॥

अकार से लेकर हकार पर्यंत जिसमें रेफ मध्य में लगा हुआ है और जो बिन्दु से सहित है, वही अर्ह परम तत्त्व है। इस परम तत्त्व को जो जानता है वही तत्त्ववेत्ता कहलाता है।

यहाँ पर अर्ह को परम तत्त्व कहा गया है जैसा कि ‘आत्म प्रबोध’ में श्रीकुमार कवि कहते हैं अर्ह में यह अकार साक्षात् अमृतमूर्ति के रूप में सुख देने वाला है। स्फुरायमान (ऊपर स्थित) ‘र’ वर्ण अवकल रत्नत्रय रूप है। ‘ह’ यह मोह सहित समस्त पापों को शीघ्र नष्ट करता है। इस प्रकार यह मिले हुए अक्षरों वाला अर्ह मन्त्र स्मरण करने योग्य है तथा बीजाक्षर रूप ‘ह’ मन्त्र की निष्पत्ति

पञ्चपदनमस्कारे

मन्त्रे च प्रथमाक्षरैः।

निष्पन्नमर्हमित्यायैः

पूर्वं प्रभाषितं बहु ॥

॥अर्ह-अष्टाङ्गयोग-27 ॥



पञ्चपदरूप नमस्कार मन्त्र के प्रथम अक्षरों के द्वारा यह **अर्ह** मन्त्र निष्पन्न होता है। इस प्रकार से पूर्व आचार्यों के द्वारा इस विषय में बहुत कहा गया है।

पञ्चपदनमस्कार मन्त्र 'णमोकार मंत्र' कहा जाता है। जो इस प्रकार है

- अरिहन्तों को नमस्कार हो
- सिद्धों को नमस्कार हो
- आचार्यों को नमस्कार हो
- उपाध्यायों को नमस्कार हो
- लोक में सभी साधुओं को नमस्कार हो

इसमें पाँच परमेष्ठियों (परमपदों) को नमस्कार किया गया है।

पाँच परमेष्ठी है- 1. अर्हत्. 2. सिद्ध. 3. आचार्य, 4. उपाध्याय 5. साधु

इन पाँचों के प्रथम अक्षरों से- आद्य वर्णों से अर्ह 'इति' 'अर्ह' 'यह मन्त्र:- मन्त्र निष्पन्नः निष्पादित हुआ है या बना है।

पञ्चपदप्रथम अक्षरों से

1. अर्हत् में अर्ह शब्द है उससे 'अर्ह' ग्रहण किया गया है।
2. सिद्ध अशरीर है 'अशरीर' शब्द का अर लिया गया है।
3. आचार्य का अर्थ है 'सूरि या अर्य'- 'अर्य' शब्द का 'अर' लिया गया है
4. उपाध्याय अध्यापक है- अध्यापक शब्द का 'अ' आद्य वर्ण लिया गया है।

5. साधु मुनि है मुनि शब्द का म् (आद्य वर्ण) ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार से 'अर्ह + अर + अर + अ + म्' इस अवस्था में 'रूप में रूप प्रवेश हो गया' इस कथन से अकार और रकार लुप्त हो गये अर्थात् (अ र् ह् अ + अ र् अ + अ र् अ + अ + म् में प्रथम 'अ' में सभी अ समाहित हो गये तथा प्रथम 'र' में सभी र समाहित हो गये। बीजाक्षर में ऐसा नियम है। अतः 'अर्ह-म् शेष रहा।) इस अवस्था में अर्ह का उच्चारण करने के लिए 'अ' का आगम (आक्षेप) कर लिया गया (अतः, 'अर्ह म्' इस अवस्था में) सूत्र है- 'यदि म् के बाद व्यज्जन हो तो म् का अनुस्वार हो जाता है। म् को अनुस्वार होने पर 'अहं' यह तत्त्व सिद्ध हुआ। इस प्रकार 'अर्ह' यह बीजाक्षर आचार्यों या बुद्धिमानों ने अनेक प्रकार से कहा है।

अर्हत्	सिद्ध	आचार्य	उपाध्याय	साधु
अर्ह	अशरीरी	सूरी या अर्य	अध्यापक	मुनि
अर्ह	अर	अर	अ	म्
अ	अ	अ	अ	→ अ
र्	र्	र्		→ र
ह				→ ह
अ	अ	अ		→ अ
				म् → म्

अर्ह

अर्ह मन्त्र ध्यान का फल

ओं अर्हमितिसन्मन्त्रं
ध्यायतो वर्धते रुचिः ।
तत्त्वे नश्यत्यबुद्धिं च
मन्दिरमुद्रया मुदा ॥

॥अर्ह-अष्टाङ्गयोग-28 ॥



प्रसन्नता पूर्वक मन्दिर मुद्रा से 'ओम् अर्ह' इस समीचीन मन्त्र का ध्यान करने वाले के तत्त्व में रुचि बढ़ती है और उसके अज्ञान अंधकार का नाश होता है।

जिसमें पञ्चनमस्कार मन्त्र के पाँचों पदों के प्रथमाक्षर बीजाक्षररूप में सन्निविष्ट हैं ऐसे 'अर्ह' इस मन्त्र को इस शरीर में स्थापित करके मन्दिरमुद्रा के द्वारा ध्यान करने वाला योगी, तप और श्रुत से रहित होने पर भी कभी अज्ञानी नहीं होता क्योंकि उसकी बुद्धि उस तत्त्व में रुचि होने से सदा प्रकाशित रहती है।

मस्तक के ऊपर दोनों हाथों का शिखराकार जोड़कर रखना ही **मन्दिर मुद्रा** है। मन्दिर रूप जो मुद्रा होती है वह मन्दिरमुद्रा है। इस मन्त्र का ध्यान 'मन्दिरमुद्रा' या 'मन्दरमुद्रा' से करने पर योगी महाफल प्राप्त करता है।

मस्तक के ऊपर दोनों हाथों का शिखराकार जोड़कर रखना ही **मन्दिर मुद्रा** है



अर्ह सिद्धात्मा का बीज मन्त्र

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म-

-वाचकं परमेष्ठिनः ।

**सिद्धात्मध्यानसद्बीजं
ध्यात्वैतन्मोक्षसंगताः ॥**

॥समाधिभक्ति-11 ॥

अर्ह यह अक्षर परमेष्ठी के शुद्ध आत्मा का वाचक है। सिद्ध आत्माओं के ध्यान करने का

समीचीन बीज है। इसका ध्यान करके अनेक जीव मोक्ष को प्राप्त हुए हैं।

अर्ह में तीन तत्त्व

अकारश्चन्द्रमस्तत्त्वं

हकारः सूर्यतत्त्वगः ।

रकारो वह्नितत्त्वं

स्या-दहं तत्त्वत्रयात्मकम् ॥

॥अर्ह-अष्टाङ्गयोग-30 ॥

'अ'कार चन्द्रमा तत्त्व है। 'ह'कार सूर्य तत्त्व है। 'र'कार अग्नि तत्त्व है और अर्ह इन तीनों तत्त्व स्वरूप है।

यह 'अर्ह' मन्त्र तीन अक्षरों वाला है अ-र-ह।

अकारः अ-वर्ण चन्द्रमा रूप सार ज्ञात किया जाता है। जैसा कि श्रीकुमार कवि ने 'आत्मप्रबोध' में कहा है - यह अकार साक्षात् अमृतमयी मूर्ति है जो सुख देता है। अर्थात् 'अर्ह' इस मन्त्र में अवर्ण प्रत्यक्ष रूप में अमृतमयी मूर्ति अथवा चन्द्रमा है।

हकारः ह-वर्ण सूर्य तत्त्व से (तत्त्व के अनुसार) जाता है अर्थात् ह वर्ण सूर्य है। जैसा कि 'आत्मप्रबोध' में वर्णन किया गया है 'किरणों द्वारा बना हुआ'-अतः र-वर्ण से व्याप्त किरणा की ज्योति वाला (इस प्रकार का सूर्य) है।

श्री नेमिचन्द्र शास्त्री ने 'णमोकार मन्त्र एक अनुचिन्तन' में मातृका ध्वनियों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है वहाँ 'ह' वर्ण के विषय में कहा है- यह वर्ण आकाश तत्त्व से युक्त, कर्मनाशक तथा सभी बीजों का जनक है। अतः



यहाँ पर ह वर्ण सूर्य ही है।

रकार: र-वर्ण अग्नि तत्त्व है। यहाँ प्रामाण्य है कि अमरकवि के द्वारा रचित 'एकाक्षरी कोश' में र-वर्ण अग्नितत्त्व के अर्थ में है। अतः यह मन्त्र तीन तत्त्वों का रूप है। अर्थात् यह मन्त्र चन्द्र वह्नि सूर्य रूप है। जैसा कि श्रीकुमार कवि ने कहा है-' इस प्रकार **अर्ह** अभिन्नाक्षर पद के रूप में ही बीजाक्षर स्मरणीय है। इस प्रकार 'अर्ह' इस मन्त्र में प्रत्येक अक्षर का महत्व है।

अकार	→	चन्द्रमा तत्व	
हकार	→	सूर्य तत्व	
रकार	→	अग्नि तत्व	

अर्ह का तीन नाड़ी में प्रयोग

वामा च दक्षिणा नाडी

सुषुम्ना त्रितयी मता।

प्रत्येकमक्षरं ध्यायन्

प्रभावे याति देहिषु ॥

॥अर्ह-अष्टाङ्गयोग - 31 ॥

बाई नाड़ी, दाई नाड़ी और सुषुम्ना नाड़ी ये तीन नाड़ियाँ मानी गई है। अर्ह के प्रत्येक अक्षर का ध्यान करते हुए ये नाड़ियाँ सभी जीवों में प्रभाव को प्राप्त होती हैं।

अर्ह-इस मंत्र में तीन अक्षर हैं। जैसे-अ-र - ह। यहाँ पर **अकार वर्ण के लिए वामा(बाई) इड़ा नाम की नाड़ी है। 'र' के लिए दक्षिणा (दाई) पिंगला नाम की नाड़ी है और सुषुम्ना-**

सबसे प्रमुख सुषुम्ना नाम की नाड़ी है। यह नाड़ी (सुषुम्ना नाड़ी) तो इड़ा व पिंगला नाड़ियों के मध्य में स्थित है। अन्य नाड़ियाँ सुषुम्ना नाड़ी के आश्रय में रहती हैं। इड़ा नाड़िका शरीर के बाएं भाग में स्थित होकर सुषुम्ना नाड़ी की ओर कार्य करती है तथा पिंगला नाड़ी शरीर के दाएं भाग में स्थित होकर सुषुम्ना नाड़ी के प्रति कार्य करती है।

अर्ह योग प्रणेता **मुनि श्री प्रणम्यसागर जी** ने नाड़ी वर्णन 'अर्ह ध्यान योग' नामक रचना में विस्तार पूर्वक किया है। यहाँ पर तो इतना ही पर्याप्त है कि प्रत्येक शरीर में 72000 नाड़ियाँ होती है। 'ज्ञानार्णव' में भी नाड़ियों के विषय में निम्न प्रकार विवेचन है:

यह नासिका से आने वाला पवन एक नाड़ी में अढाई नाली युग (मुहूर्त) प्रमाण काल तक रहता है तत्पश्चात् वह उसे छोड़कर दूसरी नाड़ी में अधिष्ठित हो जाता है। कुछ आचार्यों ने दिन-रात (60 घड़ी) प्रमाण काल के भीतर दोनों नाड़ियों में क्रम से होने वाले इस वायु के संक्रमण को सोलह बार निश्चित किया है। अभिप्राय यह है कि उनके मतानुसार इस वायु का परिवर्तन दिन और रात में दोनों नाड़ियों के भीतर क्रम से सोलह बार होता है। स्वस्थ मनुष्य में प्रायः वायु का जाना और आना दिन-रात के भीतर इक्कीस हजार छह सौ (21600) बार निर्दिष्ट किया गया है।

इस श्लोक का भाव है कि जो योगी बाई (इड़ा नाम की) दाई (पिंगला नाम की) तथा सुषुम्ना नाड़ियों के माध्यम से 'अर्ह'- मन्त्र का ध्यान करता है वह अवश्य ही इस मंत्र के सुप्रभाव से



सुखकारी लाभ प्राप्त करता है।

ओं अर्ह भी तत्त्व हैं

आगम के अनुसार तत्त्व विविध रूप में कहे गये हैं। तत्त्व अर्थात् गुण। 'ओम्' तत्त्व का भी ज्ञापन किया गया है। ओंकार जब बिन्दु से युक्त हो जाता है तो ओं बन जाता है जिसका योगीजन ध्यान करते हैं। यह ओंकार सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है, मोक्ष को देने वाला है। इस प्रकार के ओंकार को पुनः पुनः नमन।

'ओम्' के विषय में सोमदेवाचार्य ने 'यशस्तिलकचम्पू' काव्य में कहा है- 'पंचपरमेष्ठी वाचक बीजाक्षर वाले 'ओ' मन्त्र का नासिका के अग्रभाग में दृष्टि लगाकर जो मन के मध्य में स्थापित करता है वह दिव्यज्ञान को प्राप्त करता है। 'ज्ञानार्णव' में शुभचन्द्राचार्य ने कहा है- 'इस महातत्त्व महाबीज, महामन्त्र, महापद रूप को ध्यानी शरदकालीन चन्द्रमा के समान गौर वर्ण के धारक 'ओ' को 'कुम्भक' प्राणायाम द्वारा चिन्तन करें।'

'अर्हम्' तत्त्व है यह कथन 'तत्वानुशासन' में भी इस प्रकार है- आदि, मध्य और अन्त में (अ-र-ह अक्षरों से) जो वाङ्मय (वर्णमाला) से व्याप्त होकर रहता है। वह अर्हन्तों का वाचक 'अर्हम्' पद है जो हृदय में ऊँची उठती हुई ज्योति के रूप में कहा जाता है।"

अन्यत्र 'अर्हम्' तत्त्व को सद्बीज कहा गया है- 'अर्हम्' यह अक्षर (तत्त्व) ब्रह्म तत्त्व है तथा परमेष्ठी का वाचक है। यह सिद्धचक्र का बीज अक्षर है। श्रीजिनसेनाचार्य ने 'अर्ह' तत्त्व को परमबीज रूप कहा है - अकार जिनके आदि में है, हकार जिसके अन्त में है तथा रकार मध्य

में है और अन्त में बिन्दु है इस अर्हम्' नामक परम बीजाक्षर का ध्यान करते हुए मुक्ति की इच्छा करने वाला योगी कभी भी दुःख नहीं उठाता है।"

अहं से अर्ह

मनोवाक्कायसंसार

योऽहंबुद्ध्या प्रवर्तते।

अहं ध्यात्वा लयं कृत्वा

सोऽहंकार भवेदर्हम्॥

॥अर्ह-अष्टाङ्गयोग - 33॥

अनित्य और अत्राण वृत्ति वाले सभी जीवों में नित्य ही अहंकार के कारण प्रत्येक प्राणी दुःख को प्राप्त होता है। इसीलिए निश्चय से अहं वृत्ति छोड़ने योग्य हैं। अर्थात् अहंकार छोड़ने योग्य है।

इस विषय में रामसेनाचार्य ने कहा है- कर्मों के द्वारा की गयी जो पर्याय है वे निश्चयनय से आत्मा से भिन्न हैं। उनमें आत्मा का मिथ्या आरोप है उसका नाम अहंकार है जैसे मैं राजा हूँ मैं बलवान हूँ मैं धनी हूँ आदि। अहंकार मियारूप होता है। अतः त्याज्य है।

मन-वचन-काय रूपी संसार में जो अहम बुद्धि से या अहंकार से प्रवर्तित होता है, अर्ह का ध्यान करके तथा अहंकार का विनाश करके वह स्वयं अर्ह बन जाता है।

मन, वचन और शरीर रूपी जगत में जो जीव या योगी अहं बुद्धि से अहंकार युक्त हो जाने से प्रवृत्ति करता है, इस मंत्र का ध्यान



करके अहंकार दोष को विनाश करके वह योगी परमात्मरूप हो जाएगा। इस विषय में 'तत्त्वानुशासन' में कहा गया है अपने आदि, मध्य और अन्त में (अर्ह के अ-र-ह वर्णों के द्वारा) जो वाणी या वर्णमाला में व्याप्त होकर रहता है। वह अर्हत्तों का वाचक अर्ह पद है जो कि हृदय में ऊपर उठती हुई ज्योति के रूप में

नाम ध्येय है।' अर्थात् आदि, मध्य और अन्त में जो देववाणी की वर्णमाला में व्याप्त है वह 'अर्ह मंत्र (शब्द) अर्हत्तों (भगवान् अरिहत) का वाचक (कहने वाला) है। यह 'अर्ह मंत्र हृदय में ज्योतिरूप है।

सहज योग का लक्षण

कुछ प्रयत्न जब तक रहा, तब तक न सद्ध्यान।
मन का भी विश्राम जब, सहजयोग तब जान॥

विविधता गलत नहीं

नानाविध जग जीव हैं, बहु विध जीवन ढंग ।
गलत किसी को मत कहो, देखो सबके रंग ॥



UNIT 2: विधि एवं लाभ



Chapter 2.1 – अर्ह: पाँच चरण प्रक्रिया

हमारा ध्येय क्या?

प्रत्येक व्यक्ति जीवन जीता है, कुछ का जीवन सोदेशिक, उद्देश्य सहित होता है, कुछ का निरुद्देश्य। उद्देश्य रहित जीना व्यर्थ है। आप चाहें सफल हों या असफल, लेकिन **जीवन मात्र इच्छा पूर्ति के लिये नहीं। अच्छे उद्देश्य की प्राप्ति के लिये होना चाहिए।** A common man lives a life with desires, but a great man lives a life with purpose. जब उद्देश्यों की बात आती है तो वह भी दो प्रकार के होते हैं। पहला अपने जीवन को संसार में देखते हुए सांसारिक उद्देश्य बनाना। उनमें सभी प्रकार के लोकोपकार के कार्य आ जाते हैं। अपना कैरियर, अपनी प्रतिष्ठा, दुनिया के लिये कुछ करने का उद्देश्य इत्यादि। उसमें धार्मिक, सामाजिक, देश आदि के लिए या अपने परिवार आदि के लिए अच्छा करने के लिए जीवन लगा दिया जाता है। इन उद्देश्यों का ज्ञान संसार में भली प्रकार अनेक तरह के motivators या classes के माध्यम से सभी को सहज उपलब्ध है। हम यहाँ दूसरे उद्देश्य की चर्चा करते हैं जिसमें **आत्मोन्नति का उद्देश्य** होता है। यह उद्देश्य ही हमें आध्यात्मिक बनाता है। इसके लिए पहले हमें ज्ञात होना चाहिए कि आत्मा की उन्नति कैसे होती है? आत्मोन्नति को प्राप्त आत्मा कौन हैं, उन्होंने हमें आत्मोन्नति के रास्ते क्या बताए हैं? इस प्रकार की जानकारी ही हमारा प्रमुख उद्देश्य, ध्येय होना चाहिए।

अर्ह – पाँच चरण प्रक्रिया

अर्ह ध्यान योग में पाँच चरण होते हैं। ये चरण एक एक करके हमें बाहर से अंदर की ओर ले जाते हैं, अंतर्मुखी करते हैं और ध्यान के उद्देश्य की ओर ले जाते हैं।

इन चरणों को **अर्ह** शब्द के अक्षरों से हिंदी और इंग्लिश में आसानी से याद कर सकते हैं।

अर्ह = अ + र् + ह् + अ + म्

ARHAM = A + R + H + A + M

अ	A	Activation	अंग क्रिया	पाँच नमस्कार मुद्रा
र्	R	Relaxation	रमण	कायोत्सर्ग एवं प्राणायाम
ह्	H	Healing	हृत् गद्	बाद
अ	A	Awareness	अवबोध	ध्यान
म्	M	Motivation	मनोबल	विश्व कल्याणो अर्ह योग प्रार्थना

आइये सीखते अर्ह के पाँच अक्षरों के विश्लेषण के साथ सम्पूर्ण अर्ह योग की प्रक्रिया।

1. अ - अंग क्रिया - (Activation)

- पहले चरण में हम बाहर से भीतर आने के लिए समस्त बाह्य जगत की चिन्ता को छोड़कर अपने शरीर को संचालित करते हैं। इसमें हम शरीर के मुख्य पाँच केन्द्रों पर प्रभाव डालने वाली पंच मुद्राओं और उनके अनेक उपभेदों से समस्त शरीर में



ऊर्जा प्रवाह को संतुलित करके अन्तरंग यात्रा प्रारम्भ करने के लिए तैयार होते हैं। जब शरीर, मन ऊर्जा से भरे हों तो मन चेतना में स्थित हो पाता है। अंग- अर्थात् शरीर। शरीर की समुचित ऐसी क्रिया जिससे पूरे शरीर में प्राण शक्ति का संचार पर्याप्त मात्रा में हो सके। इसे इंग्लिश में activation भी कहते हैं क्योंकि ये हमारे शरीर को सक्रिय करता है, क्रियाशील बनाता है।

2. र् - रमणं (Relaxation)- शरीर में मन को लगाना, घुमाना जिससे मन की शक्ति शरीर के अंगों में प्रवाहित हो सके, यही रमण है। श्वास के माध्यम से की जाने वाली इस प्रक्रिया से शरीर का प्रत्येक अंग, उपांग, भीतरी अवयव शान्त, क्रियाशील, शक्ति सम्पन्न अपनी कार्य क्षमता को बढ़ा लेते हैं। इस चरण में हम अपनी अंतर्यात्रा में सूक्ष्मता की ओर एक कदम आगे बढ़ते हुए शरीर से श्वास पर केन्द्रित होते हैं। इसे प्रक्रिया को Relaxation भी कहते हैं।

3. ह् - हृत गद - (Healing) - हृत अर्थात् निकल गया, दूर हुआ, गायब हुआ। गद यानि रोग। एक ऐसी प्रक्रिया जिससे रोग चला जाए, दूर हो जाए। इस प्रक्रिया को Healing भी कहते हैं। इस प्रक्रिया में हम मन्त्र नाद से, रंग से, अच्छी प्रार्थना, सकारात्मक भावना से रोग को दूर किया जाता है। इस प्रक्रिया की सकारात्मक, धनात्मक ऊर्जा हमें रोग मुक्त करती है। रोग भगाने की यह एक सतत प्रक्रिया है।

4. अ - अवबोध- (Awareness) -

इसे सजगता या Awareness भी कहते हैं। स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर बढ़ते हुए इस चरण में मन, वचन, काय पृथक् भासित होते हैं। इस अवबोध में एक अद्भुत अनुभूति होती है। साधक उतनी ही देर तक जागृत है। बाद में यह प्रक्रिया छूटने पर वह अपने शरीर से जुड़ जाता है। मन, वचन, काय में आत्मबुद्धि धारण कर लेता है और अपने से भिन्न मन, वचन, काय इन तीनों को आत्मा मानने लगता है। सजगता ही जीवन है।

5. म् - मनोबल - Motivation -

अवबोध के बाद यह मनोबल उत्पन्न होता है। इस अवबोध में रुके रहना ध्यान की ओर ले जाता है। यदि मन एकाग्र हो जाए तो 'मनोरोध' कहलाता है। इसलिए अवबोध से ही Motivation या Meditation होता है। उपर्युक्त चार प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप जो परिवर्तन साधक महसूस करता है वह मनोबल है और यदि वह साधक उसी प्रक्रिया में रुचि बनाए रखता है तो वह मनोरोध है। इस तरह पाँचवा अंग अहं की आंशिक या पूर्ण अनुभूति परक है। ध्यान में स्थित साधक धारणा, समाधि आदि की यात्रा का पात्र बनता है

इस unit में हम हर चरण को विस्तार से समझेंगे और उन्हें करने की विधि, सावधानियाँ एवं लाभ भी जानेंगे। उससे पूर्व हम पांच परमेष्ठी, पांच केंद्र और कुछ मूलभूत मुद्राएँ और आसन जिन्हें अहं ध्यान योग में उपयोग में लाते हैं, उन्हें समझते हैं।



पंच परमेष्ठी/पंच सोपान

परमेष्ठी कहते हैं जो परम (Supreme) भावों में स्थित हो।

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु यह पंच परमेष्ठी है

यह सब ऐसे नाम हैं जो किसी न किसी qualitative person की ओर indicate करते हैं।

1. अरिहन्त परमेष्ठी - अरिहन्त का मतलब है जिसने अपने अन्तरंग के शत्रुओं को जीत लिया है। कर्म ही जीव के अरि-शत्रु हैं। साधु साधना करते हुए जब अपनी कषाय, अपने क्रोध, अपने काम, अपनी ईर्ष्या रूप कर्मों का विनाश स्वयं अपने पुरुषार्थ से कर लेता है तो वह अरिहन्त कहलाता है। यह स्व आत्मा की उपलब्धि से प्राप्त एक अवस्था (State) है, कोई पद नहीं जो किसी के द्वारा दिया जाए या उससे हटा दिया जाए। इस अवस्था में स्वयं के अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तसुख और अनन्त शक्ति इन गुणों को प्रकट करके सदा इन्हीं का अनुभव करता हुआ स्व में पूर्ण निमग्न रहता है। इसीलिए अरहन्त भगवान की तरह पूज्य हैं। यह अरिहन्त दशा साधना की अंतिम दशा सिद्ध दशा से पहले की दशा है। शरीर के साथ रहता है, विहार करना, उपदेश देना, उठना, बैठना आदि क्रियाएं दूसरों के देखने में आती हैं। इस दशा में सब कुछ बहुत ही अदभुत और अचिन्त्य महिमा के साथ होता है। जितना आयुकर्म शेष रहता है उतना ही

इस अवस्था में रहता है बाद में शरीर रहित हो मात्र आत्मा रह जाता है।

2. सिद्ध परमेष्ठी-भगवान सिद्ध आत्मा इसका मतलब होता है जिन्होंने अपनी हर तरीके से अपनी सिद्धि कर ली है। अब उन्हें कुछ भी सिद्ध करने को बचा नहीं है। जो बिल्कुल purified, pure soul हो गए हैं। शरीर रहित, कर्म संस्कार से रहित पूर्ण स्वतन्त्र, आत्म निष्ठ, अमूर्त, सूक्ष्म, परपदार्थों के बन्धन और व्यवधानों से रहित अवस्था, शरीरगत भूख, प्यास, थकान, निद्रा से रहित अवस्था, मानसिक चिन्ता, ईर्ष्या, राग, द्वेष, मोह, आकुलता से रहित अवस्था, ऐसी इस अन्तिम शुद्ध अवस्था को ही सिद्ध परमात्मा, सिद्ध भगवान, शुद्ध आत्मा और अर्ह कहा जाता है। अनन्त काल तक इस दशा में रहना ही मुक्ति सुख है। इस अवस्था से फिर लौटना नहीं होता है। अरिहन्त भी पीछे नहीं लौटते और सिद्ध भी कभी संसार में नहीं आते हैं। इसे ही आत्मा का परिनिर्वाण/मोक्ष कहते हैं।

3. आचार्य परमेष्ठी - आचार्य यह एक पद है जो योग्यता और पूर्व कृत पुण्य के होने पर प्रभावना के कारण बनता है। यह एक सामाजिक और संधीय व्यवस्था है जो बड़े संघ को उचित रीति-नीति से संचालित करने के लिए लागू की जाती है। जो हमें अध्यात्म की दीक्षा दें जो हमारे लिए अध्यात्म का आचरण कराएँ वह हमारे लिए आचार्य होते हैं। अन्य साधु समूह पर अपना अनुशासन रख पाना, उन्हें हमेशा



समीचीन मार्ग पर चलाना, प्रायश्चित और दीक्षा देना यह सब कार्य भी आचार्य परमेष्ठी के हैं।

4. उपाध्याय परमेष्ठी - संघस्थ साधुओं को अध्यात्म का अध्ययन/अध्यापन का कार्य कराना उपाध्याय परमेष्ठी का कार्य है।

चूंकि आचार्य परमेष्ठी एवं उपाध्याय परमेष्ठी यह दोनों ही परमपद के अभिलाषी हैं, स्वात्म साधक हैं, साथ ही साथ संघीय जिम्मेदारी का निर्वाह भी करते हैं अतः साधू से अधिक आदरणीय और पूज्य हैं। समाधि से पूर्व पद को छोड़कर आत्म साधना करते हैं।

5. साधु परमेष्ठी - जब कोई व्यक्ति आत्म उन्नति के सोपान पर अग्रसर होना चाहता है तो उसे सर्वप्रथम ऐसा जीवन जीना होता है जो पुराने संस्कारों का विनाशक और नये भावों, अनुभवों को विकास करने वाला हो। इसी जीवन को साधु जीवन कहते हैं। ऐसा जीवन जीने वाले साधु परमेष्ठी होते हैं। जो विचार, भाव जन सामान्य के होते हैं वे इन साधु के नहीं होते हैं। जैसे संसारी प्राणी सदा भोजन की चिन्ता में, किसी न किसी बातों से, अप्रिय घटना न हो जाए इस बात से डरता है, किसी के प्रेम में, राग में पड़कर विपरीत लिंग (opposite sex) या समलैंगिक राग में पड़कर देह के आकर्षण की चिन्ता में पड़ा रहता है, व दूसरे पदार्थों को इकट्ठा करने की चाहत में रहता है, ये सब आहार, भय, मैथुन, परिग्रह की तीव्र लालसाएं चार संज्ञाएँ हैं जो इनसे

पूर्ण मुक्त होकर जीवन जीता है वह साधु है। वह साधु आत्मा के लिए जीता है, इसलिए वह शरीर को अपना नहीं मानता, शरीर पर किसी तरह के आवरण, मन में किसी पदार्थ के प्रति राग, द्वेष, मोह न करते हुए निश्चिन्त रहता है। इसी कारण से वह निर्बन्ध होता है। मुक्ति का पात्र बन जाता है।

पाँच केन्द्र

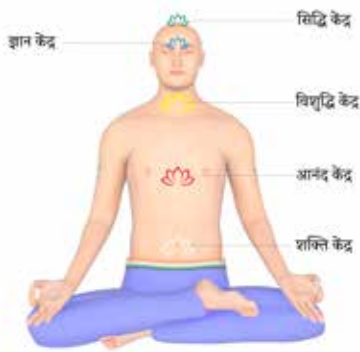
पाँच केन्द्र - पाँच परमेष्ठी को अपने शरीर के केन्द्रों पर ध्यान करने की पद्धति बहुत प्राचीन है। इसे पदस्थ ध्यान कहते हैं। धर्म ध्यान करने की इस पद्धति पर पूर्वाचार्यों ने बहुत जोर दिया है।

पाँच मुद्राओं के माध्यम से हमारे शरीर के सभी मुख्य केन्द्र हैं activate होते हैं और शरीर में ऊर्जा का एक अद्भुत संचार होता है। इसी बात को ध्यान में रखकर पाँच केन्द्रों पर अरिहन्त आदि पंच परमेष्ठी का ध्यान मुद्राओं के साथ करने के लिए जो पद्धति विकसित हुई है उसी का नाम अर्ह ध्यान योग है।

शरीर में नाभि के ऊपर के अवयव शुभ माने गए हैं। इसी कारण से अर्ह ध्यान में शरीर में नाभि, हृदय, कण्ठ, भृकुटि मध्य स्थान और शिर का ऊपरी भाग को मुख्य केन्द्र माना जाता है। अन्यत्र केन्द्रों की कल्पना की जाती है। जैनाचार्यों ने ध्यान के स्थान बताए हैं इन्हें ध्यान केन्द्र कह सकते हैं। इन पाँच केन्द्रों के नाम शरीर के गुण धर्म को ध्यान में रखते हुए परिभाषित किए जाते हैं।



- शक्ति केंद्र = नाभी स्थान (सफेद रंग)
- आनंद केंद्र = हृदय स्थान (लाल रंग)
- विशुद्धि केंद्र = कंठ स्थान (पीला रंग)
- ज्ञान केंद्र = भृकुटियों के बीच (नीला रंग)
- सिद्धि केंद्र = सिर का ऊपरी भाग (हरा रंग)



इन केन्द्रों में कुछ परम्परागत भेद हो सकता है लेकिन वह अभिप्राय की अपेक्षा से या परम्पराओं में भेद दिखाने मात्र की अपेक्षा से ही जानना चाहिए।

पंच मुद्रा के माध्यम से इन पाँचों ही energy center को activate किया जाता है और इन्हें ऊर्जावान बनाया जाता है।

बैठने के मूलभूत आसन

बैठने के भी बहुत सारे तरीके होते हैं। यहाँ पर हम कुछ सरल और मूलभूत तरीकों के बारे में जानेंगे।

सुखासन

सबसे पहले जब हम अपने दोनों पैरों को एक के नीचे एक रखकर बैठते हैं तो इसे हम **सुखासन** कहते हैं।



अर्ध पद्मासन

जब हम अपने एक पैर को दूसरे पैर की जंघा के ऊपर रख लेते हैं चाहे right पैर को left जंघा पर या left पैर को right जंघा पर तो इसे **अर्ध पद्मासन** कहा जाता है।



पूर्ण पद्मासन

तीसरा जब हम अपने दोनों पैरों को अर्थात् right पैर को left जंघा पर और left पैर को right जंघा पर रखते हैं तो इसे **पूर्ण पद्मासन** कहते हैं।



इस तरह सीधे बैठने के हमारी दिनचर्या में बहुत लाभ हैं क्योंकि हमारा शरीर एक सशक्त और जटिल मशीन की तरह है, जिसकी सारी ऊर्जा का प्रवाह हमारे मेरुदण्ड (spinal cord) के माध्यम से होता है। जैसे यदि आप किसी पौधे में या washing machine में पाइप से पानी डाल रहे हो और वो पाइप बीच में से मुड़ जाएँ या टूट जाए या कट जाए तो या तो उस पानी का प्रवाह कम हो जाएगा या पानी का प्रवाह ही नहीं होगा ठीक उसी तरह से यदि हमारी ये मेरुदंड झुकी रहेगी तो हमारे शरीर में ऊर्जा प्रवाह भी कम हो जाएगा या रुक जाएगा और यदि हम सीधे बैठेंगे तो हमारे शरीर में वो ऊर्जा का प्रवाह बनाये रखेगा।

खड़े होने के मूलभूत आसन

खड़ासन

कायोत्सर्ग; अपने दोनों हाथों को लंबे लटका लें। पेरों में ४ अंगुल का अंतर रखें। शरीर को सीधा रख कर ध्यानरूप खड़ा होना।



मूलभूत मुद्राएँ

प्रार्थना मुद्रा

अपने दोनों हाथों को जोड़कर सीने के पास रखें, दोनों हाथ ज़मीन से सामानांतर हों। आपके कन्धों पर और हाथों में एक खिचाव आपको महसूस होना चाहिए।

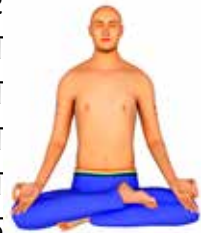


हाथों को जोड़कर विश्राम के लिए प्रयोग होने

वाली इस मुद्रा को प्रार्थना मुद्रा कहते हैं।

ज्ञान मुद्रा

अपने हाथों को घुटनों पर रखें और हाथों की हथेली ऊपर की ओर आकाश की तरफ होनी चाहिए। तर्जनी उंगली (इंडेक्स फिंगर) को गोलाकार मोड़कर अंगूठे (थम्ब) के अग्रभाग को स्पर्श करना अन्य तीनों उंगलियों को सीधा रखना यह ज्ञान मुद्रा है।



Chapter 2.2 – Activation

अ - अंग क्रिया - (Activation) -

बाहर से भीतर आने के लिए समस्त बाह्य जगत की चिन्ता को छोड़कर थोड़ा समय अपने लिए निकालें। अपने शरीर को संचालित करें। आज व्यक्ति किसी भी कार्य में एक धुन से लगा रहता है, जिससे सारी ऊर्जा किसी एक चिन्ता में खप जाती है। शरीर में आवश्यक प्राण ऊर्जा की आपूर्ति न हो तो वह उसी स्थान पर रुग्ण हो जाता है। शरीर के मुख्य पाँच केन्द्रों पर प्रभाव डालने वाली पंच मुद्राओं और उनके अनेक उपभेदों से समस्त शरीर को ऊर्जा से भर लेने पर प्राणी अन्तरंग की यात्रा पर आता है। जब शरीर, मन ऊर्जा से भरे हों तो मन चेतना में स्थित हो पाता है। पंच परमेष्ठी को ध्यान में रखकर यथाशक्ति पंच मुद्राओं से शरीर को ऊर्जावान, सशक्त बनाने की प्रक्रिया ही अंग क्रिया है। अंग- अर्थात् शरीर। शरीर की समुचित ऐसी क्रिया जिससे पूरे शरीर में प्राण शक्ति का संचार पर्याप्त मात्रा में हो सके। प्राणी के अन्दर प्राणशक्ति का संचार सम्पूर्ण शरीर में यदि बिना बाधा के प्रवाहित रहे तो शरीर से बाहर हो जाते हैं। शरीर अपनी रक्षा बाहरी विभक्त वाइरस, बैक्टीरिया से स्वतः करने में सक्षम इस अंग क्रिया के माध्यम से हो जाता है।

अर्ह ध्यान योग का प्रथम चरण - Activity मुख्यता प्रारंभ होता है पंच नमस्कार मुद्रा से

पंच मुद्रा विस्तार

अर्ह ध्यान योग की प्रक्रिया पंच मुद्रा से प्रारंभ होती है। ये पंच मुद्रा हमारे अन्दर नमस्कार और समर्पण के भाव का विकास करती है, पंच मुद्रा से हमारा शरीर निरोगी, मन प्रसन्न और चित्त निर्मल बनता है। इसे हम रंगों के आलम्बन के साथ, मन्त्रों के आलम्बन के साथ, केन्द्रों के आलम्बन के साथ और इस तरह की variation के साथ कर सकते हैं। यह सिर्फ़ मुद्राएँ नहीं हैं, यह एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है। आज की भागदौड़ भरी ज़िंदगी में जहाँ हमें समय नहीं मिल पाता है और health focus के नाम पर हम खाली physical fitness की बात करते हैं, physical development की activities करते हैं, वहाँ पंच मुद्रा एक holistic health को ले कर चलती है और समय की कमी में भी इसे किया जा सकता है। ये पंच मुद्राएँ homeopathy दवाई की तरह हैं जिनके परिणाम दूरगामी हैं और प्रभावी भी हैं। इस पाठ में हम पंच मुद्रा को करने की संपूर्ण विधि को जानेंगे।

पंच मुद्राएँ homeopathy दवाई की तरह हैं जिनके परिणाम दूरगामी हैं और प्रभावी भी हैं।



पाँच केन्द्र आधारित पाँच मुद्रायें - पाँच केन्द्रों को ऊर्जावान, सशक्त बनाने के लिए पाँच मुद्रायें हैं। सामान्यतः सभी मुद्रायें पूरे शरीर को



लाभ पहुँचाती हैं परन्तु विशेष लक्ष्य करने पर इन्हें पृथक-पृथक पाँच केन्द्रों का नियन्त्रण कह सकते हैं। हर मुद्रा का केन्द्रों पर प्रभाव इस तरह समझ सकते हैं



अरिहन्त मुद्रा	शक्ति केंद्र	नाभी स्थान (सफेद रंग)
सिद्ध मुद्रा	आनंद केंद्र	हृदय स्थान (लाल रंग)
आचार्य मुद्रा	विशुद्धि केंद्र	कंठ स्थान (पीला रंग)
उपाध्याय मुद्रा	ज्ञान केंद्र	भ्रुकुटियों के बीच (नीला रंग)
साधु मुद्रा	सिद्धि केंद्र	सिर का ऊपरी भाग (हरा रंग)

पंच परमेष्ठी पर आधारित पंच नमस्कार मुद्रा -

1. ओं अर्हं नमः के साथ जब मुद्रा लगायी जाती है तो उससे मानसिक विकारों से मुक्ति मिलती है।
2. मुद्रा में स्थिरता रहने से शारीरिक विकार व अस्वस्थता दूर होती है।

इस तरह अर्हं ध्यान योग की पंच नमस्कार मुद्रा पद्धति सभी प्राणिगण के लिए लाभप्रद सिद्ध होती है। तन, मन और चेतन के सम्पूर्ण विकास के लिए यह आवश्यक है। इसमें जाति, रंग, सम्प्रदाय भेद का कोई स्थान नहीं है। मन, वचन, काय तीनों एक साथ जब शुभपरिणति में ढलते हैं तब तीनों योगों से पुण्य कर्म का संचय होकर आत्मा मन और शरीर के योग्य पवित्रता स्वतः प्रस्फुटित होती है। यह पवित्रता

ही शुद्धि कहलाती है। **मन, वचन, काय के साथ आत्मा की शुद्धि का प्रयोजन बनाकर इस योग को करना चाहिए।**

पंच नमस्कार मुद्रा

अर्हं में पंच परमेष्ठी समाहित है। अरिहंत के अ से लेकर साहू के ह तक का पंच परमेष्ठी की साधना की ऊर्जा इसमें निहित है। जो अनन्त सिद्ध हुए हैं उन अनन्त सिद्धात्माओं का बीजभूत मन्त्र भी यही अर्हं है। आइये सीखते हैं पंच नमस्कार मुद्रा।

अरिहंत मुद्रा (Mudra for Power)

सबसे पहली मुद्रा अरिहंत मुद्रा, इस मुद्रा के माध्यम से हम अरिहंत भगवान के अनन्त गुणों



को नमस्कार करते हैं और उन्हें प्राप्त करने की भावना करते हैं

इस मुद्रा को **P for power** मुद्रा भी कहते हैं।



1. मुद्रा लगाने की विधि-



यह मुद्रा बैठकर या खड़े होकर दोनों तरह से लगाई जा सकती है।

बैठकर करने के लिए - सुखासन, अर्ध-पद्मासन या पद्मासन में आसन को स्थिर करना होता है। **खड़े होकर करने के लिए** - दोनों पैरों को एक साथ जोड़कर खड़े होते हैं।

- 1.1. सबसे पहले प्रार्थना मुद्रा से अपने दोनों हाथों को धीरे-धीरे कान के पास लाते हुए ऊपर की ओर ले जाएँगे आपस में जोड़ेंगे और जितना हो सके उतना ऊपर की ओर ले जाएँगे
- 1.2. ध्यान रखेंगे कि आपकी पाँचों उँगलियाँ आपस में मिली हो, दोनों हाथ आपस में जुड़े हुए हों, दोनों हाथ कान के साथ लगे रहेंगे और कोहनियाँ बिल्कुल सीधी।
- 1.3. रीढ़ की हड्डी पर, आपके पेट पर, नाभी

पर एक खिंचाव महसूस होना चाहिए पूरे शरीर को बिल्कुल सीधा रखते हुए, गर्दन भी सीधी रखेंगे हाथों को आपस में जोड़ कर रखेंगे।

- 1.4. अरिहंत भगवान के चरणों को हम छू रहे हैं इसी भावना के साथ आँखें बन्द रखेंगे
- 1.5. पाँच बार ओं अर्हं नमः का मन ही मन स्मरण करेंगे।
- 1.6. Relax करेंगे धीरे-धीरे अपने हाथों को नीचे ले कर आएँगे प्रार्थना मुद्रा के लिए।

2. केंद्र

ये मुद्रा हमारे पहले केंद्र यानी हमारे शक्ति केंद्र को active करती है।

3. समयावधि-

इस स्थिति में यथा सम्भव इच्छानुसार 1 मिनट से 3 मिनट तक रह सकते हैं।

प्रारम्भ में जितनी शक्ति बने उतना ही करना चाहिए। धीरे-धीरे समयावधि बढ़ानी चाहिए।

प्रसन्नता के साथ करना चाहिए।

4. श्वास संयोजन

श्वास को सामान्य रखकर यह मुद्रा लगाई जा सकती है।

विशेष लाभ के लिए श्वास भरते हुए हाथों को ऊपर ले जाना होता है।

जितनी देर श्वास रोक सकते हैं उतनी देर रोकना



होता है फिर धीरे-धीरे श्वास को छोड़ते हुए हाथ नीचे प्रार्थना मुद्रा में लाते हैं।

इस क्रम को 3 से 9 बार तक दोहरा सकते हैं।

5. मन्त्र प्राणायाम- मन्त्र के साथ यह मुद्रा कई गुना अधिक लाभकारी हो जाती है।

मुद्रा लगाने के बाद **ओं अर्ह नमः** मंत्र का उच्चारण जोर से या मन ही मन 9 बार कर सकते हैं।

6. लाभ

1. इस मुद्रा से मेरुदण्ड का टेढ़ापन दूर होकर सशक्तता आती है।
2. बच्चों की लंबाई (कद) बढ़ाने के लिए अत्यन्त उपयोगी है।
3. खड़े होकर करने से जंघा, पिंडलियाँ, पंजे भी मजबूत होते हैं।
4. कमर के पास की चर्बी घटती है।
5. Diabetic मरीजों के लिए लाभकारी
6. आलस्य, निद्रा दूर होती है।
7. नई ऊर्जा का संचार होता है और ताजगी मिलती है।
8. थकावट दूर हो जाती है।
9. आगे बढ़ने का साहस बढ़ता है।
10. आपका शक्ति केन्द्र सक्रिय होता है जो दिव्य ऊर्जा का प्रवेश द्वार है।

सिद्ध मुद्रा(Mudra for Energy)



दूसरी मुद्रा सिद्ध मुद्रा, इस मुद्रा के माध्यम से हम सिद्ध परमेश्वरी के गुणों का स्मरण करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि उनकी energy की प्राप्ति हमें भी हो।

इस मुद्रा को **E for Energy** मुद्रा भी कहते हैं।

1. मुद्रा लगाने की विधि-

यह मुद्रा बैठकर या खड़े होकर दोनों तरह से लगाई जा सकती है।

बैठकर करने के लिए - सुखासन, अर्ध-पद्मासन या पद्मासन में आसन को स्थिर करना होता है। **खड़े होकर करने के लिए** - दोनों पैरों को एक साथ जोड़कर खड़े होते हैं।





1.1 प्रारम्भ करेंगे प्रार्थना मुद्रा से अपने दोनों हाथों को सीधा लाएँगे और अंजुली की shape में इन्हें खोल लेंगे अपने दोनों हाथों को आपस में जोड़ कर रखेंगे और एक छोटी सी कटोरी की form में बनाएँगे

1.2 ध्यान रखेंगे कि हमारी कोहनियाँ बिल्कुल सीधी होनी चाहिए, रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी हो और हमारे कन्धों पर खिंचाव महसूस हो।

1.3 इसी मुद्रा में रुककर धीमे से अपनी आँखें बंद करके महसूस करेंगे सिद्ध भगवान की शुद्ध ऊर्जा इन हाथों से हमारे हृदय में प्रवाहित हो रही है आँखें बंद कर के पाँच बार ओं अर्ह नमः का स्मरण करेंगे।

1.4 Relax करेंगे प्रार्थना मुद्रा में आएँगे।

2. केंद्र

ये मुद्रा हमारे दूसरे केंद्र यानी हमारे आनन्द केंद्र को active करती है।

3. समयावधि-

इस स्थिति में यथा सम्भव इच्छानुसार 1 मिनट से 3 मिनट तक रह सकते हैं।

प्रारम्भ में जितनी शक्ति बने उतना ही करना चाहिए। धीरे-धीरे समयावधि बढ़ानी चाहिए।

प्रसन्नता के साथ करना चाहिए।

4. श्वास संयोजन

श्वास को सामान्य रखकर यह मुद्रा लगाई जा सकती है।

अधिक लाभ के लिए थोड़ा श्वास भरकर इस मुद्रा में रहें।

जब श्वास छूटने लगे, मुद्रा को छोड़कर प्रार्थना मुद्रा में आए। इस क्रम को 3 से 9 बार तक दोहरा सकते हैं।

5. मन्त्र प्राणायाम- मन्त्र के साथ यह मुद्रा कई गुना अधिक लाभकारी हो जाती है।

मुद्रा लगाने के बाद इस मंत्र का ('ओं अर्ह नमः') उच्चारण जोर से या मन ही मन 9 बार कर सकते हैं।

6. लाभ

1. श्वसन तन्त्र पर प्रभाव पड़ता है।
2. फेफड़े मजबूत होते हैं।
3. भीतर भरी carbon dioxide बाहर निकलती है।
4. हृदय में शुद्ध ऊर्जा का प्रवाह बढ़ता है।
5. भुजाओं का बल बढ़ता है।



6. हाथ के कंपन दूर होते हैं।
7. श्वास सम्बन्धी बीमारियों में लाभ होता है।
9. आपका आनन्द केन्द्र विकसित होता है।

आचार्य मुद्रा (Mudra for Activity)



तीसरी मुद्रा है आचार्य मुद्रा, इस मुद्रा के माध्यम से हम आचार्यों को नमस्कार करते हैं और उनके गुणों की प्राप्ति का भाव करते हैं।



इस मुद्रा को **A for Activity** मुद्रा भी कहते हैं।

1. मुद्रा लगाने की विधि-

यह मुद्रा बैठकर या खड़े होकर दोनों तरह से लगाई जा सकती है।

बैठकर करने के लिए - सुखासन, अर्ध-पद्मासन या पद्मासन में आसन को स्थिर करना होता है। **खड़े होकर करने के लिए** - दोनों पैरों को एक साथ जोड़कर खड़े होते हैं।

- 1.1 प्रार्थना मुद्रा से अपने दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा में लाएँगे। ज्ञान मुद्रा यानी पहली उँगली और अंगूठा इनको आपस में join करेंगे बाक़ी तीनों उँगलियों को सीधा रखेंगे।
- 1.2 इस तरीके से दोनों हाथों को इस प्रकार ज्ञान मुद्रा में लाएँगे। अपने हाथों को इसी मुद्रा में कन्धों के पास ले जाएँगे।
- 1.3 कोहनियों को कमर के पास लाएँगे। हाथों और हथेलियों में 90 degree का angle बनाएँगे इसी 90 degree के angle को कन्धों के पास ले जाकर बनाना है।
- 1.4 कोहनियाँ कमर के पास chest थोड़ी सी बाहर की तरफ़ और गर्दन थोड़ी सी ऊपर की तरफ़।
- 1.5 आपको यहाँ chest में अपने कन्धों में गर्दन में थोड़ा सा stretch होना चाहिए।
- 1.6 आँखें बंद करेंगे और आचार्य परमेश्वर का पूर्ण रूप से हमें आशीर्वाद प्राप्त हो इसी भावना के साथ
- 1.7 पाँच बार ओं अर्हं नमः का मन ही मन स्मरण करेंगे।



1.8 Relax करेंगे प्रार्थना मुद्रा में आएंगे।

2. केंद्र

ये मुद्रा हमारे तीसरे केंद्र यानी हमारे विशुद्धि केंद्र को active करती है।

3. समयावधि-

इस स्थिति में यथा सम्भव इच्छानुसार 1 मिनट से 3 मिनट तक रह सकते हैं।

प्रारम्भ में जितनी शक्ति बने उतना ही करना चाहिए। धीरे-धीरे समयावधि बढ़ानी चाहिए।

प्रसन्नता के साथ करना चाहिए।

4. श्वास संयोजन

श्वास को सामान्य रखकर यह मुद्रा लगाई जा सकती है।

अधिक लाभ के लिए थोड़ा श्वास भरकर इस मुद्रा में रहें।

जब श्वास छूटने लगे, मुद्रा को छोड़कर प्रार्थना मुद्रा में आए।

इस क्रम को 3 से 9 बार तक दोहरा सकते हैं।

5. मन्त्र प्राणायाम- मन्त्र के साथ यह मुद्रा कई गुना अधिक लाभकारी हो जाती है।

मुद्रा लगाने के बाद इस मंत्र का ('ओं अर्ह नमः') उच्चारण जोर से या मन ही मन 9 बार कर सकते हैं।

6. लाभ

1. कंधे मजबूत होते हैं।

2. Thyroid सम्बन्धी रोग दूर होते हैं।

3. कण्ठ के रोग दूर होते हैं।

4. मानसिक विशुद्धि बढ़ती है।

5. शुद्ध विचार आते हैं।

6. स्मरण शक्ति बढ़ती है।

7. रीढ़ की हड्डी का शुद्धिकरण होता है।

8. आपके विशुद्धि केन्द्र को शक्तिशाली बनाता है तथा चिन्ताएँ कम होती हैं।

उपाध्याय मुद्रा (Mudra for Creativity)

चौथी मुद्रा है उपाध्याय मुद्रा, इस मुद्रा के



माध्यम से हम उपाध्याय परमेष्ठी का स्मरण करते हैं और भावना करते हैं कि उनके ज्ञान की प्राप्ति हमें भी हो।

इस मुद्रा को **C for Creativity** मुद्रा भी कहते हैं।

1. मुद्रा लगाने की विधि-

यह मुद्रा बैठकर या खड़े होकर दोनों तरह से लगाई जा सकती है।

बैठकर करने के लिए - सुखासन, अर्ध-पद्मासन या पद्मासन में आसन को स्थिर करना होता है। **खड़े होकर करने के लिए** - दोनों पैरों को एक साथ जोड़कर खड़े होतें हैं।

1.1 सबसे पहले अपने दोनों हाथों को प्रार्थना मुद्रा में लाएँगे और धीरे-धीरे अपने हाथों को बाहर की तरफ extend करेंगे जैसे हम किसी दीवार को धक्का दे रहे हो।

1.2 आपके हाथों और हथेलियों के बीच में एक 90 degree का angle बनना चाहिए

1.3 इसी 90 degree के angle के साथ अपने दोनों हाथों को बिल्कुल सीधा रख कर जैसे हम किसी दीवार को धक्का दे रहे हों ऐसे push करेंगे।

1.4 कोहनियाँ बिल्कुल सीधी पाँचों उँगलियाँ आपस में मिली हुई और दोनों हाथों के बीच में तीन से चार उंगल का फासला रखेंगे।

1.5 रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी और आपका सारा ध्यान अपने हाथों के अंगूठों पर।

1.6 उपाध्याय परमेष्ठी के स्मरण के साथ में उनके ज्ञान की हमें प्राप्ति हो इस भावना के साथ में पाँच बार ओं अर्ह नमःका स्मरण करेंगे।

1.7 Relax करेंगे प्रार्थना मुद्रा में आएँगे।

2. केंद्र

ये मुद्रा हमारे चौथे केंद्र यानी हमारे ज्ञान केंद्र को active करती है।

3. समयावधि-

इस स्थिति में यथा सम्भव इच्छानुसार 1 मिनट से 3 मिनट तक रह सकते हैं।

प्रारम्भ में जितनी शक्ति बने उतना ही करना चाहिए। धीरे-धीरे समयावधि बढ़ानी चाहिए।

प्रसन्नता के साथ करना चाहिए।

4. श्वास संयोजन

श्वास को सामान्य रखकर यह मुद्रा लगाई जा सकती है।

अधिक लाभ के लिए थोड़ा श्वास भरकर इस मुद्रा में रहें।

जब श्वास छूटने लगे, मुद्रा को छोड़कर प्रार्थना मुद्रा में आए।

इस क्रम को 3 से 9 बार तक दोहरा सकते हैं।

5. मन्त्र प्राणायाम- मन्त्र के साथ यह मुद्रा कई गुना अधिक लाभकारी हो जाती है।

मुद्रा लगाने के बाद इस मंत्र का ('ओं अर्ह



नमः') उच्चारण जोर से या मन ही मन 9 बार कर सकते हैं।

6. लाभ

1. रक्त संचार (Blood Circulation) सामान्य होता है।
2. गर्दन के दर्द (Cervical Pain) में राहत मिलती है।
3. एकाग्रता बढ़ती है।
4. नेत्र ज्योति बढ़ती है।
5. संकल्प शक्ति तीव्र होती है।
6. बाधाओं से लड़ने का साहस मिलता है।
7. हृदय केन्द्र व फेफड़ों की सफाई होती है।

साधु मुद्रा (Mudra for Evolution)

पाँचवीं मुद्रा है साधु मुद्रा, इस मुद्रा के माध्यम से हम साधु परमेष्ठी को नमस्कार करते हैं और उनके गुणों को ग्रहण करने की भावना करते हैं।

इस मुद्रा को **E for Evolution** मुद्रा भी कहते हैं।

1. मुद्रा लगाने की विधि-

यह मुद्रा बैठकर या खड़े होकर दोनों तरह से लगाई जा सकती है।

बैठकर करने के लिए - सुखासन, अर्ध-पद्मासन या पद्मासन में आसन को स्थिर करना होता है। **खड़े होकर करने के लिए** - दोनों पैरों को एक साथ जोड़कर खड़े होते हैं।

सावधानी - जिन्हें मेरुदण्ड में किसी भी प्रकार



की समस्या हो वह इस मुद्रा को ना लगाएं।

1.1 प्रार्थना मुद्रा के साथ में अपने हाथों को धीरे से ऊपर लेकर जाएँगे कानों के पास से होते हुए और सिर को धीरे-धीरे ज़मीन की तरफ झुकाएँगे

1.2 अपने दोनों हाथों को ज़मीन से लगाएँगे और प्रयास करेंगे कि हमारा मस्तिष्क भी ज़मीन से लग पाए।

1.3 मस्तिष्क को ज़मीन से लगाने के लिए श्वास को छोड़ते हुए हम नीचे की तरफ झुकेंगे जितना आप से हो सके उतना ही।

1.4 जितना आपकी रीढ़ की हड्डी allow करे। जितनी आपकी क्षमता हो उतना ही झुकेंगे।

1.5 अपने दोनों हाथों को ज़मीन से लगाएँगे मस्तिष्क को ज़मीन से लगाएँगे। हाथ बिल्कुल सीधे रखेंगे।

1.6 आपके दोनों पैर और आपके पीछे का स्थान ज़मीन के ऊपर ही रहना चाहिए। वो हवा में उठे नहीं ये हमें ध्यान रखना है।



1.7 इसी मुद्रा में खुद को स्थित कर के पाँच बार मन ही मन ओं अर्हं नमः का स्मरण करेंगे।

1.8 धीरे धीरे वापस ऊपर की ओर उठेंगे प्रार्थना मुद्रा में आ कर Relax करेंगे।

2. केंद्र

ये मुद्रा हमारे पांचवे केंद्र यानी हमारे सिद्धि केंद्र को active करती है।

3. समयावधि-

इस स्थिति में यथा सम्भव इच्छानुसार 1 मिनट से 3 मिनट तक रह सकते हैं। प्रारम्भ में जितनी शक्ति बने उतना ही करना चाहिए। धीरे-धीरे समयावधि बढ़ानी चाहिए।

प्रसन्नता के साथ करना चाहिए।

4. श्वास संयोजन

श्वास को सामान्य रखकर यह मुद्रा लगाई जा सकती है।

अधिक लाभ के लिए थोड़ा श्वास भरकर इस मुद्रा में रहें। जब श्वास छूटने लगे, मुद्रा को छोड़कर प्रार्थना मुद्रा में आए। इस क्रम को 3 से 9 बार तक दोहरा सकते हैं।

5. मन्त्र प्राणायाम- मन्त्र के साथ यह मुद्रा कई गुना अधिक लाभकारी हो जाती है।

मुद्रा लगाने के बाद इस मंत्र का ('ओं अर्हं नमः') उच्चारण जोर से या मन ही मन 9 बार कर सकते हैं।

6. लाभ

1. मस्तिष्क सक्रिय होता है।
2. पेट के रोग ठीक होते हैं।
3. मन शान्त होता है, क्रोध नियंत्रित होता है।
4. विनम्रता का विकास होता है, अहंकार पर विजय होती है।
5. सकारात्मक सोच बढ़ती है।
6. पीठ, मेरुदण्ड सीधा और लचीला होता है।
7. पेट के आसपास की अनावश्यक वसा कम होती है।
8. diabetes में लाभकारी है।
9. आपका नाभि चक्र मजबूत होता है जो आपकी अन्तर्चेतना (intuition) को बढ़ाता है।

Power Energy Activity Creativity Evolution



Arihant Mudra



Sidhh Mudra



Achary Mudra



Upadhyae Mudra



Sadhu Mudra



10. आपकी आध्यात्मिक जड़ें (Grounding)
मजबूत होती हैं।

ये पाँचों मुद्राएँ केवल मुद्राएँ ही नहीं हैं,
परिपूर्ण आसन भी हैं जब हम मन्त्र के साथ
ध्यान और भावना करते हैं तो यह पूर्ण ध्यान
का पैकेज भी बन जाता है।

Panch Mudra Chart

Mudra	Acronym	Mudra Type	Kendra	Color
अरिहंत	P	Power	शक्ति केंद्र	सफेद रंग
सिद्ध	E	Energy	आनंद केंद्र	लाल रंग
आचार्य	A	Activity	विशुद्धि केंद्र	पीला रंग
उपाध्याय	C	Creativity	ज्ञान केंद्र	नीला रंग
साधु	E	Evolution	सिद्धि केंद्र	हरा रंग

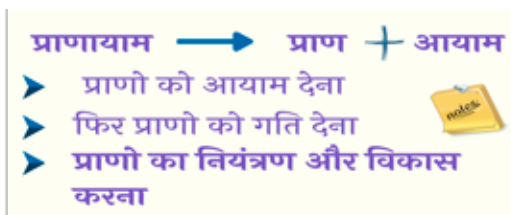


Chapter 2.3 – Relaxation

रमण (Relaxation)– शरीर में मन को लगाना, घुमाना जिससे मन की शक्ति शरीर के अंगों में प्रवाहित हो सके, यही रमण है। श्वास के माध्यम से की जाने वाली इस प्रक्रिया से शरीर का प्रत्येक अंग, उपांग, भीतरी अवयव शान्त, क्रियाशील, शक्ति सम्पन्न अपनी कार्य क्षमता को बढ़ा लेते हैं। जब मशीन के प्रत्येक स्थान पर काम करने वाले कल पुर्जे को ध्यान में रखकर उसमें आवश्यक तेल, ग्रीस आदि लगाकर कुछ रोककर काम में लिया जाता है तो अनावश्यक टूट-फूट से बचाकर मशीन को लम्बे समय तक चलाया जा सकता है। ठीक इसी तरह शरीर एक मशीन है, यकृत (Liver), किडनी, तिल्ली, फेफड़े, हृदय आदि अंतरंग अवयवों की कार्यक्षमता इस रमण की प्रक्रिया से बढ़ाकर पूरे शरीर को अधिक ऊर्जावान, सशक्त बनाया जाता है। अपने मन को शरीर के प्रत्येक अवयव पर रखें। श्वास की प्रक्रिया को ध्यान में रखकर वहाँ शक्ति प्रदान करें। **ओं अर्ह** के मन्त्रों से वहाँ उन मन्त्रों की शक्ति का संचार भी करें।

अर्ह ध्यान योग का दूसरा चरण - Relaxation मुख्यता प्रारम्भ होता है प्राणायाम से

प्राणायाम



श्वास प्राण के आयाम से हम दो तरफ यात्रा करते हैं, एक शरीर के स्तर पर, दूसरा चेतना/आत्मा के स्तर पर। यदि साधक बाहरी यात्रा तक ही सीमित रहेगा तो वह शरीर स्वास्थ्य और पोषण तक की यात्रा ही कर पाएगा किन्तु जब साधक भीतरी यात्रा की ओर अग्रसर होता है तब चेतना का विकास, मानसिक उदारता आदि गुणों का विकास और अध्यात्म की यात्रा प्रारम्भ होती है। प्राणायाम से अध्यात्म की यात्रा तभी सम्भव है जब हमें चेतन तत्व का अपने शरीर में विश्वास हो। जब हमारे श्वास का प्रवाह पूर्ण आयाम के साथ समान लय से चलने लगता है हमारी चैतन्य ऊर्जा भीतर से प्रवाहित होकर पाँचों इन्द्रियों, तीन बलों और आयु पर प्रभाव डालती है, जिससे एक अद्भुत शक्ति और शान्ति हमें शरीर और शरीर के साथ अवयवों में महसूस होती है। यहीं से अध्यात्म योग प्रारम्भ होता है।

‘योग का अर्थ जुड़ना है।’ जिस योग में अपनी आत्मा से जुड़ा जाये वह अध्यात्म योग है।

कायोत्सर्ग

प्राणायाम से अध्यात्म विद्या को प्राप्त करने के लिए एक विधि आवश्यक होती है इसे कायोत्सर्ग कहते हैं। **कायोत्सर्ग का अर्थ** है- अपनी काया का उत्सर्ग यानि त्याग। प्रश्न उठता है कि हम अपने शरीर को कैसे छोड़ सकते हैं जब कि शरीर चेतना के साथ एकमेव है? तो आचार्य कहते हैं शरीर से अपनी ममत्व बुद्धि



हटा दो।

“कायं शरीरं उत्सृजति ममत्वादिपरिणामेन त्यजतीति कायोत्सर्गः तपो भवेत्”

अर्थात् काय से, शरीर से अपने ममता रूप परिणाम (यह मेरा है) इस त्याग के साथ रहना कायोत्सर्ग है। यह एक तप है। इस तप से शरीर की शक्ति कम नहीं होती है जैसा कि और तपों में होता है किन्तु उल्टा शरीर शक्ति से भर जाता है। **कायोत्सर्ग को तप इसलिए कहा है कि इसमें चंचल मनोवृत्ति रुक जाती है।** मनोवृत्ति रुक कर जब शान्त होने लगती है, तो अनेक मानसिक चिन्ताएँ स्वतः विलीन हो जाती हैं। कायोत्सर्ग को तप इसलिए भी कहा है कि इससे आत्मा पर पड़े पुराने कर्म संस्कारों का बंधन भी शिथिल हो जाता है। इस तरह कायोत्सर्ग शिथिलीकरण की वह प्रक्रिया है जिससे स्थूल शरीर और सूक्ष्म कर्मण शरीर भी प्रभावित होने लगता है। शरीर के शैथिल्य से आँख, कान आदि इन्द्रियों पर छा रहे अनावश्यक तनाव दूर हो जाते हैं तो मन की शिथिलता से मानसिक तनाव और उस तनाव से हृदय आदि पर पड़ने वाला अनावश्यक दबाव हट जाता है, जिससे हृदय गति सामान्य होकर उच्च रक्तचाप (high Blood Pressure), निम्न रक्तचाप (low Blood Pressure), अवसाद (depression) की स्थिति तथा अनिद्रा आदि मानसिक बीमारियों से मुक्ति मिल जाती है।

कायोत्सर्ग की विधि

कायोत्सर्ग बैठकर, खड़े होकर दो ही तरीके से किया जाता है। **बैठकर** करने के लिए

कायोत्सर्ग किसी स्थिर आसन से बैठकर चाहे वह सुखासन हो या अर्ध पद्मासन या पद्मासन; किया जा सकता है।

कायोत्सर्ग

- अपनी काया का उत्सर्ग यानि त्याग
- शरीर से अपनी ममत्व बुद्धि हटा दो
- इसमें चंचल मनोवृत्ति रुक जाती है इसलिए इसे तप भी कहा



खड़े होकर करने के लिए अपने पंजों में चार अंगुल का अन्तर रख कर किया जा सकता है। कोई इसे लेट कर भी कर सकता है किन्तु लेटकर करना तभी सम्भव जब हमारा अभ्यास लम्बा हो और हमारा निद्रा पर नियन्त्रण हो। कायोत्सर्ग करने के लिए श्वासों पर पूर्ण ध्यान देते हुए मात्र श्वास को सावधानी से गिनना होता है। श्वास कैसे भी चले, किसी भी स्वर में श्वास का प्रवाह हो, उस सामान्य श्वास को न दबाव पूर्वक लें और न छोड़ें। श्वास का लेना और छोड़ना एक श्वासोच्छ्वास कहलाता है। एक कायोत्सर्ग में कम से कम सत्ताईस (27) श्वासोच्छ्वास गिनने का प्रयास करें। कायोत्सर्ग की अधिकतम सीमा योगी/साधक के अभ्यास और दृढ़ता पर निर्भर करती है।

भगवान आदिनाथ ने छह महीने का, उन्हीं के पुत्र बाहुबली ने एक वर्ष का कायोत्सर्ग किया था। आज भी जैन साधु इसी कायोत्सर्ग से अपने भावों का प्रक्षालन करके शुद्ध होते हैं।

इस श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया के साथ मन



को किसी मंत्र **ओं**, **अहं** आदि या किसी शुद्ध चेतना, निर्मल आत्मा, विकार मुक्त शुद्धात्मा के साथ भी जोड़कर रखा जाता है या मेरा आत्मा शुद्ध है मैं तनाव मुक्त हूँ, मैं मन और शरीर से परे चैतन्य की अनुभूति की ओर उन्मुख हो रहा हूँ, इस प्रकार की भावना से प्रतिबद्ध होकर कायोत्सर्ग किया जाता है। कायोत्सर्ग में मन पूर्णतः चिन्ता मुक्त और पहले से अधिक शुद्ध, शान्त और गम्भीर अनुभूति में आने लगता है। इस प्रक्रिया से आत्मिक और चित्त शुद्धि की प्रक्रिया एक रसायनिक प्रक्रिया (chemical process) की तरह कई गुना तीव्रता से होने लगती है।

इसका कारण यह है कि हमारा फोकस केवल श्वाँसों तक ही नहीं किन्तु शुद्ध आत्माओं की ग्रहणता के साथ होता है, उनकी शुद्ध-पवित्र आभा पर जाने लगता है, इसलिए प्राणायाम में **णमोकार के पद- ओं अहं नमः** मन्त्र का

समावेश किसी सामान्य रसायनिक प्रक्रिया में एक उत्प्रेरक की तरह कार्य करता है। श्वाँस लेते हुए **‘ओं’**, छोड़ते हुए **‘अहं’**, दूसरी श्वाँस लेते हुए **‘ओं’**, छोड़ते हुए **‘अहं’**, तीसरी श्वाँस लेते हुए **‘ओं’** और छोड़ते हुए **‘अहं’** का स्मरण करें।



श्वाँस लेते हुए **‘ओं’**, छोड़ते हुए **‘अहं’**

निज स्वरूप की रुचि

अहो मनुज क्यों मग्न है, पर चर्चा के काज
निज स्वरूप में रुचि बने, पर चर्चा में लाज ॥



Chapter 2.4 – Healing

हत गद (Healing) – हत अर्थात् निकल गया, दूर हुआ, गायब हुआ; गद यानि रोग। एक ऐसी प्रक्रिया जिससे रोग चला जाए, दूर हो जाए। हीलिंग की यह प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में हम मन्त्र नाद से, रंग से, अच्छी प्रार्थना, सकारात्मक भावना से रोग को दूर किया जाता है। इस प्रक्रिया की सकारात्मक, धनात्मक ऊर्जा हमें रोग मुक्त करती है। रोग भगाने की यह एक सतत प्रक्रिया है। यह समय साध्य भी हो सकता है और तात्कालिक भी।

अर्ह ध्यान योग का तीसरा चरण – Healing मुख्यता प्रारंभ होता है नाद से

अर्ह मंत्र शक्ति

हम सभी जानते हैं कि इस जगत में दो ही शक्ति विद्यमान है एक जीव शक्ति, एक अजीव शक्ति। इसी को हम कह सकते हैं एक ज्ञान शक्ति, एक शब्द शक्ति। **ज्ञान शक्ति** ही आत्मा है, चित् है, चैतन्य है, ब्रह्म है और **शब्द शक्ति** अनेक रूपों में श्रवण में आती है। चाहे वह किसी भाषा के अक्षरों में हो या ध्वनि रूप में। अनेक भाषाओं का एक साथ समावेश ध्वनि रूप में होता है। ध्वनि में अनेक भाषा के अक्षर, उनके मूल तत्वों का समावेश एक साथ हो जाता है। यह ध्वनि हमारी चेतना के जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्राचीन ऋषियों, मुनियों ने इसी ध्वनि से इस जगत के वातावरण को सदा पवित्र किया है। उस ध्वनि को उत्पन्न करने वाले अक्षर ही मन्त्र कहे जाते हैं। **‘ओंकार’** की

ध्वनि एक ऐसी ही पवित्र ध्वनि है। तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि भी ओंकार रूप होती है। इस **‘ओं’** के उच्चारण की प्रक्रिया में चेतना की शक्ति सन्निहित है। इस ओम् की तरह अनेक बीजाक्षर हैं जो शुद्धात्माओं के वाचक हैं **‘अर्ह’ भी एक ऐसा ही बीजाक्षर है।**

ध्वनि एवं नाद

सामान्य ध्वनि से नाद में विशेष अन्तर होता है। अपने ही अन्दर बीजाक्षरों के घर्षण से एक ऊष्मा उत्पन्न होती है। यह ऊष्मा ही ऊर्जा का कार्य करती है। इस ऊष्मा/ऊर्जा से शरीरगत और चित्तगत दोषों का अपचय होता है। इस प्रक्रिया को करने के लिए भी अपने शरीर के केन्द्रों पर उन अक्षरों का ध्यान करके ध्वनि उत्पन्न की जाती है।

जिनमें शुद्ध आत्माओं की शक्ति निहित हो, ऐसे अक्षर या शब्द को **मंत्र** कहते हैं। मंत्र को पढ़ने के दो भिन्न माध्यम हैं-

- जाप
- नाद

मंत्रों का आलम्बन लेते हुए **जाप और नाद के माध्यम से** अंतरंग की शक्ति को प्रकट किया जाता है।

जाप में मंत्र का repetition होता है और **‘संख्या’** की मुख्यता रहती है।

नाद में मंत्रों का उच्चारण होता है और समय



की मुख्यता रहती है।

जाप और नाद में मंत्रों के आलम्बन से अंतरंग की शक्ति को प्रकट किया जाता है।

जाप → मंत्र का repetition, संख्या की मुख्यता

नाद → मंत्रों का उच्चारण, समय की मुख्यता

नाद तीन प्रकार का होता है -

1. दीर्घ नाद (उत्कृष्ट नाद) - दूसरा सुन सके

2. मध्यम नाद - भीतर ही भीतर (होठ हिलाए बिना)

3. हल्का नाद - मन में लीन (सिर्फ खुद को सुनाई दे)

पूरे शरीर के अन्दर ओं और अहं का नाद करते हुए। अपने शरीर को अपने मन को और अपनी चेतना को तीनों प्रकार के नादों से प्रभावित करेंगे।

तीनों प्रकार के नादों की विधि एवं लाभ।

दीर्घ नाद (उत्कृष्ट नाद)

शरीर स्थूल है। स्थूल शरीर में दीर्घ आवाज वाला नाद पूरे शरीर को प्रभावित करता है।

विधि:

1. लम्बी गहरी श्वास लें
2. श्वास छोड़ते हुए ओं का उच्चारण करना है, नाभि स्थान पर ध्यान लगाते हुए, ओं को नाभि स्थान से उठाये

3. ओं बोलते हुए नाभि को भीतर की ओर ले जायें पेट को भीतर की ओर ले जायें।

4. और अहं को कण्ठ से प्रारम्भ करें।

5. अहं की ध्वनि मस्तिष्क में गुंजायमान करें।

6. और तेजी से बोलें। पूरी शक्ति लगाकर बोलें।

लाभ

- पूरे शरीर में blood circulation, control होता है।
- Blood pressure control होता है।
- सभी अंगों को ठीक करता है।
- Physical level पर स्वस्थता का अनुभव होगा।



मध्यम नाद

मन सूक्ष्म है। सूक्ष्म मन में मध्यम नाद हमारे मन को प्रभावित करता है।

विधि:

1. लम्बी गहरी श्वास लें
2. श्वास छोड़ते हुए ओं का उच्चारण (मन ही मन) करना है, नाभि स्थान पर ध्यान लगाते हुए, ओं को नाभि स्थान से उठाये।
3. ओं बोलते हुए (मन ही मन) नाभि को भीतर की ओर ले जायें पेट को भीतर की ओर ले जायें।
4. और अहं को कण्ठ से प्रारम्भ करें (मन ही मन)
5. जिसमें मुंह के होठ नहीं हिलेंगे और अं अहं की ध्वनि होगी।
6. होठ बंद करके मन को प्रभावित करने



वाले इस मध्यम नाद को करें।

7. मुंह के अन्दर होठों पर vibration महसूस करते हुए इस मध्यम नाद को करें।
8. दांतों पर vibration होठों पर vibration मुंह पर vibration आपको feel होना चाहिये।
9. और तेजी से (मन ही मन) बोलें। पूरी शक्ति लगाकर बोलें।

लाभ

- मन शांत होगा।
- मन सकारात्मक होगा।
- मन वश में होगा।
- बार-बार अभ्यास करने से विचार नियंत्रित होते हैं।
- अनिद्रा को ठीक करता है
- एकाग्रता में सुधार करता है



हल्का नाद

आत्मा अति सूक्ष्म है। अति सूक्ष्म आत्मा में हल्का नाद हमारी चेतना को प्रभावित करता है।

विधि:

1. ॐ और अर्ह की इस ध्वनि से जब मन प्रभावित हो जाता है तब बिल्कुल शान्त बैठकर इस ध्वनि को करने का प्रयास बन्द करें।
2. चेतना के स्तर पर सिर्फ ॐ और अर्ह का भीतर से अभी भी नाद हो रहा है ऐसा

महसूस करें।

3. अभी भी ॐ और अर्ह की आवाज भीतर से आ रही है।
4. उसके vibration अभी भी पूरी चेतना को महसूस हो रहे हैं।
5. बिल्कुल शान्त भाव से हर श्वास के साथ पूरे शरीर के अन्दर अभी भी वही ॐ और अर्ह की तरंगें, वही नाद के vibration अभी भी उत्पन्न हो रहे हैं पूरे शरीर में महसूस करें।
6. मन में महसूस करें।
7. चेतना तक उस ध्वनि की तरंगें पहुंची हैं महसूस करें।
8. आत्मा के अन्दर, चेतना के अन्दर परम शान्ति परम शक्ति महसूस हो रही है।
9. ॐ और अर्ह अभी भी हम भीतर ही भीतर हम कर रहे हैं ऐसा महसूस करें।
10. बिना आवाज के, बिना प्रयास के, वह ॐ और अर्ह की ध्वनि चल रही है ऐसा भीतर से अहसास करें।

लाभ

- बार-बार अभ्यास करने से भाव नियंत्रित होते हैं।
- अवन्तशक्ति स्वरूपोहं का अनुभव करने का प्रयास होता है।
- आत्मा के अन्दर शुद्ध स्वरूप प्रकट करने का अभ्यास होता है।
- आत्मा की शान्ति के अनुभव का प्रयास होता है।
- आत्मा की विशुद्धि बढ़ती है।



Chapter 2.5 – Awareness

अवबोध- यानि सजगता जिसे Awareness कहते हैं। इस अवबोध से मन, वचन, काय पृथक् भासित होते हैं। इस सजगता में चित्त के विकार स्वयं मैं आत्मा नहीं हूँ, ऐसा अवभास होता है। इस सजगता में एक अद्भुत अनुभूति होती है। साधक उतनी ही देर तक जागृत है। बाद में यह प्रक्रिया छूटने पर वह अपने शरीर से जुड़ जाता है। मन, वचन, काय में आत्मबुद्धि धारण कर लेता है और अपने से भिन्न मन, वचन, काय इन तीनों को आत्मा मानने लगता है। सजगता ही जीवन है। **‘ममाहमिति जागृति’** समाधितन्त्र में यही सजगता का चित्रण किया गया है कि मेरा मैं हूँ, अन्य नहीं। इस तरह का अवबोध अपने साध्य की अनुभूति है।

अर्हं ध्यान योग का चौथा चरण - Awareness मुख्यता रूप से ध्यान में उतरना

योग की प्रक्रिया में “ध्यान” का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। ध्यान का प्रभाव सीधे मन पर पड़ता है और मन ही वह चीज है जो हमें सबसे अधिक आकुलित करती है। मन के कारण ही हम सुख या दुख का अनुभव करते हैं या फिर गलत अथवा सही दिशा में विचार करते हैं। **ध्यान हमें इन मन के विचारों के प्रति सर्व प्रथम जागरूक करता है, अवबोध कराता है,** जिसके बाद हम धीरे धीरे उसे नियंत्रित कर के सही दिशा की ओर लगाने का अभ्यास करते हैं।

ध्यान की प्रक्रिया को **कायोत्सर्ग** से प्रारम्भ कर सकते हैं। कायोत्सर्ग की प्रक्रिया से शरीर के अंग-उपांगों को शिथिल करने के बाद, शरीर को शब्द ब्रह्म की ऊर्जा से भरकर अपने शरीर को देखने का अभ्यास करते हैं। इस प्रक्रिया में शरीर को देखना है, प्रेम से। प्रेम में न राग, मोह होता है और न द्वेष, घृणा। प्रेम जो जैसा है उसे वैसा स्वीकारता है। मन एक माध्यम है। श्वास शरीर, मन और आत्मा को जोड़ने वाला प्राण है।

शरीर के अंग-अंग को भीतरी मन से देखना, शरीर के अन्दर सभी घृणित पदार्थ होने पर भी उन्हें प्रसन्नता से सिर्फ देखना और जानना। नख से शिख तक एक साथ देखना है, जानना है। शरीर को स्वं से पृथक् जानना, देखना। आत्मा देखने-जानने वाला है। जब शरीर ही पृथक् है तो अन्य सामग्री, सघे संबंधित आदि भी हमारे अस्तित्व से भिन्न हैं।

संयोग ही दुःख है, दुःख का कारण है, जब संयोग नहीं होंगे तो दुःख का कारण भी नहीं रहेगा? इसलिए सभी संयोगों को दुःख का मूल कारण (Root Cause) जानकर इनको मन से, शब्दों से, शरीर से त्याग का भाव रखना ही कायोत्सर्ग की प्रक्रिया है।

त्रयशुद्धि

कायोत्सर्ग के माध्यम से अपने शरीर, मन, वचन आदि में अंतर जानते देखते हुए, अवबोध के चरण में हम अंतर्मुखी यात्रा पर आगे



बढ़ते हैं। इस चरण में ध्यान या आध्यात्मिक भावनायें करते हुए हम अपने विचार, भाव और चित्त तीनों को शुद्ध करते हैं। इसे त्रयशुद्धि कहते हैं। यह प्रक्रिया हमारे अंदर संस्कार बनाती है जो हमारी आध्यात्मिक यात्रा के लिए अनिवार्य है। ध्यान का विस्तार और इसके आठ अंगों के विषय में हम Unit-4 में देखेंगे।

त्रयशुद्धि की विधि

पूर्व विधि से कायोत्सर्ग, प्राणायाम करते हुए ध्यान या आध्यात्मिक भावनाओं के Step में अधिक देर तक ठहरने का अभ्यास करें। इस स्तर पर जब हम आत्मा, मन और वायु की लयबद्धता में आते हैं तो हम भीतर से पूर्ण जाग्रत होते हैं। इस स्थिति में अपनी आत्मा/अपने अस्तित्व के अलावा सभी चीजें चाहे वह अपने सम्बन्धी, परिजन, मित्र हों या सभी वैभव बढ़ाने वाली चीजें कार, मोबाइल आदि को अपने से पृथक् भिन्न 'मेरे हैं' इस भाव के बिना देखें, मेरे नहीं हैं, इस भाव से जाने। उन सभी में मेरे पन के भाव का चित्त में जो संस्कार पड़ा है, उसे तोड़े। वह तभी टूटेगा जब हम पूर्ण जागृति से इस तरह स्वयं भावना करेंगे। मात्र ज्ञाता-दृष्टा (जानना-देखना) बनकर सभी कुछ देखेंगे, जानेंगे। पूर्व के संस्कार क्षीण होंगे। चित्त शुद्धि होगा तभी भीतर से क्षमा, दया के भाव उत्पन्न होंगे। चित्त शुद्धि होने पर ही ये भाव उत्पन्न होते हैं।

इस मेडिटेशन का सुफल यह है कि हमारे अन्दर प्राणि मात्र के प्रति प्रेम का विस्तार होगा। प्रेम का विस्तार होगा तो हमें दो भावों की अनुभूति

होगी, दया और क्षमा। दया, करुणा, अनुकम्पा यह चेतना का स्वच्छ/निर्मल भाव है, जो सीधा (Direct) आत्मा से उत्पन्न होता है। मन का यह भाव बनावटी नहीं है। इस दया का दूसरा नाम अहिंसा भाव है। यह दया भीतर से प्रस्फुटित हो तो क्षमा वास्तविक होती है। किसी की गलती को अज्ञानकृत समझकर छोड़ देना, अपने ऊपर किसी के द्वारा हो रहे बुरे व्यवहार को भुलाना और अपनी बात नहीं मान रहे लोगों के प्रति भी द्वेष, घृणा का भाव न लाना क्षमा है। क्षमा वीर हृदय का आनन्द है।

किसी को दिखाने, एहसानमन्द करने के लिए नहीं अपितु अपना आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए क्षमा की जाती है। दया, क्षमा ये आध्यात्मिक भाव (Spiritual Emotion) हैं। **क्षमा जब दया के साथ होगी तो हम किसी पर क्षमा करके उसका प्रतिफल नहीं चाहेंगे।** क्षमा का प्रतिफल यही है कि आपका हृदय किसी और से ज्यादा उदार और प्रेमपूर्ण है। क्षमा का अनुभव अपने ज्ञान का आनन्द है। दया और क्षमा भाव मन, वचन, काय में जब घुल जाते हैं तो साधक समता, आत्मविश्वास और उदारता से भर जाता है। दया पूर्ण वचन व्यवहार आत्मविश्वास को बढ़ाता है। दया पूर्ण चिन्तन वास्तविक हितकर होता है। दया पूर्ण शरीर की क्रिया प्रेम बढ़ाती है। क्षमाभाव से मिश्रित वचन दूसरों का महत्त्व बढ़ाते हैं। क्षमा भाव से सिंचित चिन्तन सही निर्णायक क्षमता उत्पन्न करता है। क्षमा भाव से सहित शरीर की क्रिया (Action) व्यक्तित्व का विकास करती है।

क्षमा भाव-समता, आत्म विश्वास, उदारता प्रेम से देखने और जानने के फायदे



अपनी श्रॉस को, अपने शरीर को, अपने शरीर के प्रत्येक अवयवों को और अपने शरीर में उठने वाले कम्पनों को, तरंगों को, रंगों को, विद्युत ऊर्जा को जब हम केवल प्रेम भाव से देखते और जानते हैं तो हमारे चेतना प्राण की ऊर्जा प्रत्येक स्तर पर प्राणों के प्रवाह को बढ़ा देती है। प्राण जब इन्द्रियाँ आदि प्रत्येक स्थान पर पूर्णतया, विद्यमान होंगे तो इन्द्रियाँ क्षीण अति धीरे-धीरे होंगी। बाहरी विषाणुओं (Germs), जीवाणु (Bacteria) से लड़ने के शरीर के प्रत्येक अणु कोष में शक्ति बढ़ेगी, जिससे रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ेगी। हमारी मानसिक वृत्तियाँ जो अनेक उद्वेगों के साथ शरीर में उत्पन्न होती हैं, उन्हें जागरूक होकर हम देख सकते हैं और उन पर नियन्त्रण पाने की अन्तरंग शक्ति का विकास होता है। पूरे शरीर में फैले चेतना प्राण का एहसास शनैः शनैः होने लगता है। मात्र देखना-जानना और जब वह देखना-जानना प्रेम से हो तो हम एक संवेदन को स्वीकारते हैं, इसलिए केवल देखना-जानना जरूरी नहीं है उसके साथ प्रेमभाव होना बहुत जरूरी है। वह प्रेम भाव इतना बढ़ा हुआ हो कि दर्द भी, पीड़ा भी उतनी ही अच्छी लगे जितना कि सुखद अनुभव, प्रिय संवेदना।

“क्षमा भाव से मिश्रित वचन दूसरों का महत्त्व बढ़ाते हैं। क्षमा भाव से सिंचित चिन्तन सही निर्णय क्षमता उत्पन्न करता है। क्षमा भाव से सहित शरीर की क्रिया व्यक्तित्व का विकास करती है।”

आध्यात्मिक भावनाएँ

अशरणमशुभमनित्यं
दुःखमनात्मावसामि भवम्।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति
ध्यायन्तु सामयिके ॥104॥

-रत्नकरण्डश्रावकाचार

अर्थ- यह संसार अशरण, अशुभ, अनित्य, दुःखरूप और अनात्मरूप

है मोक्ष इससे विपरीत रूप है, इस प्रकार सामायिक में ध्यान करो।

अशरण

आत्मा शरण है, रम्य है, विश्वासयोग्य है।

जीवन भर भटकते रहे, किसकी शरण में रहूँ?

कहाँ रमण करूँ?

किस पर विश्वास करूँ?

जिसकी शरण में गए वह छूट गया।

जिसको रमणीक मानकर रमण करना प्रारम्भ किया, वह भी अरम्य भासने लगा। जिसको विश्वास योग्य स्वीकारा वह भी अविश्वसनीय बन गया। आज मेरी अन्तरात्मा चीख रही है- शरण कौन, रम्यता कहाँ, विश्वास के योग्य क्या? जो आज, इस जन्म में शरण्य है, रम्य है, विश्वास है वह कब तक, कितने जन्म तक वैसा ही रह सकता है? मेरा महाप्राण चैतन्य ही शरण है, वही आश्रय करने योग्य है, उसी में रहना योग्य है, वह रम्य है, वही विश्वास योग्य है। वही आधार है।



अशुभ

मैं आज तक जहाँ कही भी शुभ खोजता रहा।
मेरा इससे मंगल हो, उससे मंगल हो ऐसा
सोचता रहा।
मेरी कुशलता न जाने कितने सम्बन्धों पर
निर्भर रही।
मेरी मंगलता न जाने कितने हाथों में घूमती
रही।
मैं दूसरों को मंगल मानता रहा।
मैं जड़-चेतन में मंगल खोजता रहा।
मेरा मंगल मेरी चेतना में है।
चेतना के मंगल भावों में है।
सबकी चेतना में निहित चेतन तत्त्व में है।
मेरी चेतना शुभ है. कुशल है।
मेरी चेतना शुद्ध है, मंगल है।
मेरा ज्ञान, मेरी अनुभूति सकल है।

अनित्य

जो दिखता है वह अनित्य है।
जो संवेदन है वह अनित्य है।
जो सम्बन्ध थे वह भी अनित्य हैं।
जो सम्बन्ध नये बने वे भी अनित्य हैं।
जो भी पदार्थ है वह अनित्य है।
जो मन है वह अनित्य है।
मेरा शरीर अनित्य है।

मेरा वचन व्यापार अनित्य है।

दिखने वाला अशाश्वत है।

देखने वाला शाश्वत है।

जानने वाला शाश्वत है।

अनुभव करने वाला शाश्वत है।

अनुभव अशाश्वत है।

दुःख

संसार दुःख रूप है।

संयोग दुःखदायी है।

सम्बन्ध रुदन का कारण है।

अपनापन पराश्रितता का कारण है।

पर में स्वात्मबुद्धि दुःखद है।

निज में निजात्म बुद्धि सुखद है।

चाह, इच्छा, आकाँक्षा, आकुलता है।

निरीह, अनिच्छा, अनाकाँक्षा, निराकुलता है।

सुख अनाकुल है।

दुःख व्याकुल है।

सुख साम्य है।

दुःख वैषम्य है।

मान-अपमान में समता

‘आचार्य समन्तभद्र स्वामी’ (ईसा की तीसरी शताब्दी के आचार्य) कहते हैं कि- **संसार अशरण, अशुभ, अनित्य, दुःख रूप है, अनात्मा है। मोक्ष इसके विपरीत है, यह**



सामायिक में ध्यान करो।'

इस प्रकार की अध्यात्म भावना से जब चित्त शान्त हो जाता है। उसमें किसी प्रकार का विक्षेप नहीं, आकुलता नहीं, कुछ इच्छा नहीं, किसी से जुड़ने की इच्छा नहीं, किसी से दूर होने की इच्छा नहीं, कहीं भागना नहीं, पूर्ण जागृति भाव जब आ जाता है तब साधक में ऐसी शक्ति आ जाती है कि दूसरे के द्वारा दिए गए सम्मान या अपमान में वह साम्य अवस्था में बना रहता है। आदमी को सबसे ज्यादा चोट पहुँचाने वाला अहंकार है। मन में जो विचार अच्छे या बुरे उत्पन्न होते हैं वह अहंकार से स्थायी हो जाते हैं। मुझे जिसने सम्मान दिया उसके प्रति हमारी सहानुभूति बन जाती है क्योंकि वह हमें अच्छा अनुभव करा रहा है। जो हमारा अपमान करता है, उसके प्रति हमारी नकारात्मक धारणा बन जाती है। वह हमें शत्रु जैसा दिखता है। इस मनोदशा का एकमात्र कारण 'आचार्य पूज्यपाद' कहते हैं- चित्त का विक्षेप। अध्यात्म योग का मुख्य फल

मान-अपमान से विचलित नहीं होना कहा है। मान और अपमान में समता ही अपनी बुद्धि की तटस्थता है, इसी को स्थितप्रज्ञ कहते हैं। अपना चित्त अपनी वस्तु है। उसमें बाहरी कारणों से विक्षिप्तता लाना या नहीं लाना, यह अपनी स्वाधीनता है।

‘आचार्य पूज्यपाद देव’ समाधि तन्त्र में कहते हैं-

मानापमानादयस्तस्य

विक्षेपो यस्य चेतसः।

नापमानादयस्तस्य

न क्षेपो यस्य चेतसः ॥३८॥

अर्थात् मान, अपमान, आदि उसी को होते हैं जिसके चित्त में विक्षेप है। जिसके चित्त में विक्षेप नहीं है उसके लिए मान-अपमान आदि नहीं है। इस तरह मनुष्य के जीवन में सबसे ज्यादा हीन भावना का या अहंकार भावना का कारण जब नियंत्रित हो जाता है, तो वह मानसिक रूप से सदा स्वस्थ रहता है।



Chapter 2.6 – Motivation

मनोबल - Motivation - इस तरह के ध्यान का संस्कार मनोबल प्रदान करता है। **मन में आत्मबल आता है इसी को आधुनिक भाषा में Motivation कहा जाता है।** स्वयं अपने आप से मनोबल की प्राप्ति करना। अवबोध के बाद यह मनोबल उत्पन्न होता है। इस अवबोध में रुके रहना ध्यान की ओर ले जाता है। यदि मन एकाग्र हो जाए तो 'मनोरोध' कहलाता है। इसलिए अवबोध से ही Motivation या Meditation होता है। उपर्युक्त चार प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप जो परिवर्तन साधक महसूस करता है वह मनोबल है और यदि वह साधक उसी प्रक्रिया में रुचि बनाए रखता है तो वह मनोरोध है। इस तरह पाँचवा अंग अर्ह की आंशिक या पूर्ण अनुभूति परक है। ध्यान में स्थित साधक धारणा, समाधि आदि की यात्रा का पात्र बनता है। अपने शुद्ध अस्तित्व की अनुभूति अवश्य करनी चाहिए यही अर्ह की अनुभूति है। प्रत्येक प्राणी अपने शुद्ध आत्म तत्व का आंशिक अनुभव भावना परक भी करता है तो यह मनुष्य जीवन का वास्तविक आनन्द है। निजआत्मा से भिन्न सभी भाव, विचार, शरीर की अनुभूति करते हुए अपने ज्ञाता दृष्टा स्वभाव की ओर दृष्टि आना ही अर्ह की अनुभूति पाना है।

अर्ह ध्यान योग का पाँचवा चरण - Motivation मुख्यता से अनुभूति परक है

अब तक इस चरण में आते-आते हमारा मन, वचन और काय स्थिर हो चुके होते हैं। विचार,

भाव और चित्त संस्कारित हो रहे होते हैं। इस समय हम जो भावनायें करते हैं वे हमारे मनोबल को बढ़ाते हैं, आत्मबल को बढ़ाते हैं और नई ऊर्जा का संचार करते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि ध्यान से सभी इच्छित फल मिल सकते हैं, इस चरण में हम अपने इच्छित फल के अनुसार सकारात्मक विचार और वाक्यों (Positive Affirmations) को जोर-जोर से या मन ही मन में दोहराते हैं। इससे हमारा मनोबल और आत्मबल इच्छित फल की प्राप्ति के हेतु बढ़ता है। चरण के अंत में हम विश्व कल्याण की भावना करते हैं।

सकारात्मक संपुष्टि Positive Affirmations

“तित्थयरा मे पसीयंतु”

तीर्थंकर मुझे प्रसन्न करें

मैं प्रसन्न हूँ, मैं स्वस्थ हूँ, मैं सम्पूर्ण हूँ,

मैं एक विशुद्ध दिव्य आत्म तत्त्व हूँ।

I am happy, I am healthy, I am whole,

I am a divine being of purity.

अच्छे सम्बन्धों के लिए

सर्व प्रथम पांच मुद्राओं का 10 मिनट अभ्यास करें। श्वासोच्छ्वास को 27 बार देखें और गिनती करें। 7 बार 'ओं अर्ह नमः' का दीर्घ उच्चारण करें। उसके बाद यह प्रार्थना 9 बार (जोर से बोलकर) दोहराएँ।



पुरुष

- मैं अपने परिवार से अच्छे सम्बन्ध चाहता हूँ।
- मैं अपने परिवार को सुखी शक्तिमय बनाऊँगा।
- मुझे जो भी संयोग मिले हैं मैं उनसे खुश हूँ।
- मुझे संसार में जो भी मिला है वह मेरे ही किए का फल है।
- मैं सबको हृदय से स्वीकार करता हूँ।



गोद के बालक एवं बालिका के लिए

- मेरी गोद जल्दी-जल्दी बड़ी हो।
- मेरी संतान बहुत समझदार है।
- मेरी संतान में जिद नहीं है।
- मेरी संतान मुझसे खुश है।
- मेरी संतान बड़ी होकर नेक इंसान बनेगी।
- मेरी संतान बड़ी ही तेजस्वी और ज्ञानी है।
- मेरी संतान सबके काम आयेगी।



स्त्री

- मैं अपने पति, परिवार आदि का उपकार मानती हूँ।
- मैं सभी के प्रति नम्र हूँ।
- सभी सदस्य मेरे हित-चिन्तक हैं।
- मैं परिवार की जिम्मेदारी पूर्ण निभाऊँगी।
- मैं अपनी समझदारी और बढ़ाऊँगी।
- मैं घर के प्रत्येक सदस्य की हित-चिन्तक बनूँगी।
- मैं करुणा, क्षमा की प्रतिमूर्ति हूँ।



विद्यार्थियों के लिए

- मैं मन लगाकर पढ़ूँगा।
- मैं माता-पिता के सपनों को पूरा करूँगा।
- मैं कभी परीक्षा के समय नहीं घबराऊँगा।
- मैं साहस के साथ आगे बढ़ूँगा।
- मैं अच्छे मित्रों के साथ ही रहूँगा।
- मैं अपने देश धर्म और कुल के मान को बढ़ाऊँगा।
- मेरे लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।
- मैं अपने माता-पिता और गुरुजनों के प्रति आदर रखूँगा।
- मैं गाली, कटु शब्द और अभिमान के वचन नहीं बोलूँगा।
- मैं दुनिया में सबसे विशिष्ट हूँ।



गर्भस्थ बालक के लिए (पेट पर हाथ रखकर)

- गर्भस्थ बालक के लिए (पेट पर हाथ रखकर)
- मैं अपनी संतान को पूर्ण प्रेम करूँगी।
- मेरी संतान मेरे असीम सुख का स्रोत है।
- गर्भस्थ जीव पूर्ण स्वस्थ रहे।
- गर्भस्थ जीव देश और धर्म की महान विभूति बने।
- मेरे पुण्य का फल मेरी संतान को मिले।
- गर्भस्थ शिशु आयुष्मान हो, ज्ञानवान हो, सर्व कला सम्पन्न हो।



निराशा आने पर/अवसाद होने पर

- मैं पूर्ण हूँ।
- मुझे कोई अभाव नहीं है।
- मेरे सब काम अपने आप बनेंगे।
- मैं जो चाहूँगा वही होगा।
- मुझे कोई भय नहीं।
- मेरे पास मेरे भाग्य से मिला सब कुछ है।
- मैं दुनिया का सबसे सुखी इन्सान हूँ।



सफल वीकरी/व्यवसाय के लिए

- मैं अपना काम समय पर करूँगा।
- मैं अपने बॉस की अपेक्षाओं को पूर्ण करूँगा।
- मैं अपने काम के साथ परिवार के लिए भी समय निकालूँगा।
मैं अपने परिवार के सदस्यों की बात को ध्यान से सुनूँगा।
- मैं अपनी आय और बचत को देखकर ही चीजें खरीदूँगा।
- मैं कम से कम चीजों से खुश रहूँगा।
- मैं व्यर्थ का खर्चा करके अभिमानी नहीं बनूँगा।
- मैं अपना काम पूर्ण लगन और ईमानदारी से करूँगा।
- मैं प्रतिदिन कुछ दान अवश्य करूँगा।
- मैं सुबह-शाम कम से कम 10 मिनट आत्म-चिन्तन करूँगा।
- मैं अपने काम के साथ धर्म और सामाजिक गतिविधियों में भी समय दूँगा, रुचि रखूँगा।



रोगी के लिए

- मैं मन से प्रसन्न हूँ।
- मुझे कोई रोग नहीं है।
- मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ।
- मैं रुग्ण शरीर से भिन्न आत्मा हूँ।
- आह! मेरा शरीर स्वस्थ हो रहा है।
- आह! मेरा रोग भाग गया।
- मुझे कहीं दर्द नहीं है।



डर लगने पर

- डर और मुझे, नहीं! नहीं! नहीं!
- मैं किसी से नहीं डरता।
- मैं बहुत बलवान हूँ।
- मुझे परमात्मा से अभयदान मिला है।
- मैं वही करके दिखाऊँगा जिससे मुझे डर लगता है।
- मेरे जैसी हिम्मत किसी में नहीं।



विश्व कल्याणी 'अर्ह' योग प्रार्थना

मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो
बैर न होवे पाप न होवे भाव क्षमा का हो॥1॥

मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो
मेरा मंगल तेरा मंगल सबका मंगल हो॥2॥

मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो
मेरा जीवन तेरा जीवन सबका उत्तम हो॥3॥

मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो
प्रभु के चरणा गुरु के चरणा सबको शरणा
हो॥4॥

मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो

तन निरोगी मन हो निर्भय बोधि समाधि
हो॥5॥

मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो

दुखियारा ना कोई होवे मन ज्योतिर्मय हो॥6॥

मेरे मन में तेरे मन में सबके मन में हो।



UNIT – 3: प्राणायाम



Chapter 3.1 – प्राणायाम

प्राणायाम शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है-
प्राण + आयाम

प्राणों के आयाम मतलब उसकी **दीर्घता** या **लंबाई** की यहाँ पर मुख्यता रहती है। यहाँ जब प्राणों की बात की गई है तो मुख्यतः श्वासोच्छ्वास की ही है।

जब हमारा प्राण अर्थात् श्वासोच्छ्वास “आयाम” के साथ में हो यानी **दीर्घता** के साथ में हो और वह दीर्घता इस तरह की हो कि वह हमारे **नाभि को स्पर्श करे** तो वह सही प्राण कहलाता है। इस प्राणायाम की प्रक्रिया को करके ही हम अपने प्राणों का आयाम सही बना सकते हैं।

इसमें **दो** चीजें होती है-

- एक- प्राणों का आयाम और
- दूसरा- प्राणों की आने-जाने की गति (उस गति पर ध्यान देना)

प्राण

हमने बहुत बार अपने जीवन में व्यवहारिक रूप से ‘प्राण’ शब्द का उपयोग किया है। प्राण जीवन है, प्राण ऊर्जा है। इसके बिना शरीर निर्जीव है। प्राण को हम ऐसे समझें कि यह शरीर और मन को एक-दूसरे के साथ जोड़ने के लिए एक कड़ी है। शरीर और मन को शक्ति प्राणों से ही मिलती है। वास्तव में प्राण वह शक्ति है जिसके द्वारा श्वास नीचे की ओर खिंचा जाता है। प्राणों के कारण हम श्वास लेते और छोड़ते हैं। **प्राण वह तत्व है जिससे प्रत्येक प्राणी का जीवन चल**

रहा है। सभी जानते हैं, सुनते भी हैं कि प्राण है, तो जीवन है। प्राण निकल गए तो मृत्यु हो गई। लेकिन प्राणों की परवाह हम जीवन में बहुत कम करते हैं या यूँ कहें कि करते ही नहीं हैं। जब आदमी मरणासन्न हो तभी हम प्राण देखते हैं, नाड़ी टटोलते हैं, तभी हम हृदय की धड़कन सुनते हैं, तभी हम किसी प्राणी को श्वास का आरोहण-अवरोहण महसूस करते हुए देखते हैं। कुल मिलाकर जिन प्राणों से हम जीवन जीते हैं और जीने का माध्यम जो श्वास-उच्छ्वास है, उसे ही हम प्राण मानते हैं और उसी पर सभी का ध्यान केन्द्रित रहता है लेकिन यह प्राण का एक प्रकार का भेद है। प्राण की सम्पूर्णता नहीं, प्राणों का पूर्ण विज्ञान नहीं है। यह बात सत्य है कि इस श्वास-उच्छ्वास पर ही सम्पूर्ण प्राण टिके हैं इसलिए हम सभी इसी प्राण पर ध्यान देते हैं। इसलिए हर कोई सिर्फ इतना ही बताता है कि ‘Prana’ is breath, ‘Ayama’ is to restrain or expand. Hence **“Prana-yama means to control our own breathing process and expand your consciousness”**. अर्थात् ‘**प्राण**’ श्वास हैं, ‘**आयाम**’ उस श्वास का नियंत्रण और विकास करना है। इस प्रकार प्राणायाम का अर्थ- श्वास का नियंत्रण और ज्ञान का विकास है। प्राणायाम से दोनों ही बातें घटित होती हैं परन्तु ज्ञान का, चेतना का विकास कैसे होता है? प्राणों का इससे क्या सम्बन्ध है? यदि ज्ञान-चेतना के विकास से सम्बन्ध नहीं है तो प्राणायाम में केवल श्वासों



को स्थिर करने से क्या घटित होगा? आइए इसके लिए समझते हैं कि प्राण वास्तव में कितने हैं, इनकी सम्पूर्णता कहाँ निहित है?

प्राण वह तत्व है जिससे प्रत्येक प्राणी का जीवन चल रहा है।



प्राणों के भेद

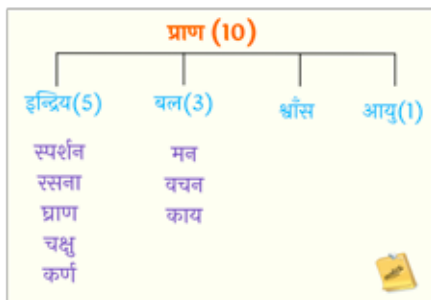
मनुष्य के लिए प्राणों के दस भेद हैं। पाँच इन्द्रियाँ- स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण; तीन बल- मनोबल, वचनबल, कायबल; श्वास और आयु इस तरह यह दस प्राण होते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि श्वास भी एक प्राण है और इसके साथ सभी प्राणों का समायोजन होता है। इस श्वास से हम आयु प्राण को भी व्यवस्थित करते हैं अर्थात् जितनी आयु हम लेकर आये हैं उतनी आयु पूर्ण जी लेना तभी सम्भव है जब हमारा श्वास नियंत्रित हो। इसी के साथ श्वास की गति से हमारी इन्द्रियाँ स्वस्थ और संयमित रहती हैं। हमारा मनोबल स्थिर और शक्तिशाली होता है। हमारा वचन बल बढ़ता है और काय बल भी स्थिर तथा पुष्ट होता है। ये सभी प्राण शरीर आश्रित हैं इसलिए इन दस प्राणों को व्यवहार प्राण कहा जाता है।

प्राण सभी जीवों में है

ज्यादातर लोग श्वास (Breathing) को ही प्राण मानते हैं किन्तु यह एक बहुत ही स्थूल विचारधारा है। जब हम सूक्ष्मता से विचार करते हैं तो प्राण हमारे शरीर के एक-एक कोशिका (Cell) में समाहित रहता है।

प्राण के कारण प्रत्येक कोशिका जीवित रहती है। इसे चिकित्सा विज्ञान (medical science) कोशिकीय श्वसन (Cellular Respiration) कहता है। इसी अवधारणा से यह सिद्ध होता है कि जो जीव जिनमें श्वास लेने के लिए Lungs नहीं होते हैं फिर भी उनमें प्राण तो होते हैं, श्वासोच्छ्वास होती है। जैसे एकेन्द्रिय वनस्पति आदि जीव और दो, तीन इन्द्रिय, लट, चींटी आदि जीव। इन जीवों का यह श्वासोच्छ्वास प्राण इसी कोशिकीय श्वसन से सिद्ध होता है।

नियमित श्वास → स्वस्थ इन्द्रिय → स्थिर व शक्तिशाली मनोबल, उन्नत वचनबल, पुष्ट कायबल



Chapter 3.2 – श्वास के प्रकार

पिछले अध्याय में हमने पढ़ा कि नाक या मुँह से सांस लेने और छोड़ने की क्रिया श्वास है। जब हम सांस लेते हैं, हवा में उपस्थित आक्सीजन फेफड़ों में पहुँचती है और खून के निकट संपर्क में आती है जो उसे अवशोषित कर लेता है और शरीर के सभी भागों में ले जाता है। साथ ही साथ खून कार्बन डाइऑक्साइड को शरीर से लाकर फेफड़ों में छोड़ता है जो उच्छ्वास के साथ फेफड़ों से बाहर निकाल दी जाती है। इस अध्याय में हम श्वास कितने प्रकार के होते हैं, यह जानेंगे।

श्वास के प्रकार

1. नाड़ी श्वास
2. उदर श्वास

नाड़ी श्वास

योग के सन्दर्भ में नाड़ी वह मार्ग है जिससे होकर शरीर की ऊर्जा प्रवाहित होती है। हमारे शरीर में 72000 नाड़ियाँ होती हैं, जिसमें तीन मुख्य होती हैं- इडा, पिंगला और सुषुम्ना जिसको विस्तार से हम आगे आने वाले अध्याय में पढ़ेंगे। यह 72000 नाड़ियाँ शरीर के प्रत्येक रोम से निकलती हैं, जिनसे ऊर्जा का आदान-प्रदान होता है। इन नाड़ियों के माध्यम से ही इस्तेमाल की गई ऊर्जा या Toxins हमारे शरीर से बाहर जाती है और ताजी (Fresh) ऊर्जा हमारे शरीर में प्रवेश करती है। बीमारी की स्थिति में यह आवागमन सुचारु रूप से

नहीं हो पाता और व्यक्ति को दर्द या परेशानी का अनुभव होता है। प्राणायाम करने से हमारी नाड़ियों का शोधन होता है और काफी सारे अवरोध स्वतः ही खुल जाते हैं। नाड़ी श्वास एक मुहूर्त में 3773 बार चलती हैं।

उदर श्वास या उदरीय श्वसन

उदरीय श्वसन, जिसे abdominal breathing भी कहा जाता है, एक प्रक्रिया है जिसमें गहरी सांस लेनी होती है ताकि आपके शरीर को ऑक्सीजन की पूरी आपूर्ति प्राप्त हो। गहरी श्वास लेने से हृदय गति धीमी होती है और रक्तचाप (BP) स्थिर रहता है। यह एक मुहूर्त(48मिन) में 720 बार चलती है।

जैन शास्त्रों में मनुष्य के अन्दर श्वासोच्छ्वास की गिनती मात्र श्वास-उच्छ्वास से नहीं होती है किन्तु नाड़ी (Pulse) के माध्यम से होती है। एक स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी औसतन मात्र एक मिनट में बहत्तर (72) बार गति करती है जबकि श्वासोच्छ्वास एक मिनट में सामान्यतः 10 से 15 बार होता है।

श्वासोच्छ्वास और जीवन की लम्बाई

इस श्वासोच्छ्वास पर ही जीवन की लम्बाई निर्धारित होती है। जितनी श्वासें जल्दी चलती हैं जीवन जल्दी समाप्त हो जाता है। जैनाचार्य कहते हैं कि हम आयु को कभी बढ़ा नहीं सकते हैं। हाँ! जितनी आयु पूर्वजन्म से बाँध कर लाये हैं उसी को यदि व्यवस्थित जीवन शैली



से जिया जाए तो वह आयु पूर्ण जी सकते हैं। आयु के विषय में यह बड़ी सैद्धान्तिक रोचक बात है कि 'आयु घट तो सकती है, अकाल में मरण हो सकता है किन्तु बढ़ नहीं सकती है।' इसी पूर्ण आयु को जीने के लिए ऋषियों ने अपनी इन्द्रियों और मन को कछुए की तरह संकुचित करने के लिए कहा है। विज्ञान कहता है कि कछुए की आयु अन्य प्राणियों की अपेक्षा सर्वाधिक होती है। अपनी पाँच इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने से अपनी श्वास पर नियन्त्रण बन जाता है। यही कारण है कि ज्यादा हाँफने वाला ज्यादा जी नहीं पाता है। दौड़ने के कितनी देर बाद हृदय गति सामान्य हो जाती है, इस बात पर भी हृदय की मजबूती निर्भर करती है। आपका हृदय कितना मजबूत है या फिर कितना Stress झेल सकता है, इसको check करने का एक practical तरीका है। आप पहले आराम के दौरान Heart rate (x) चेक कर लें। फिर 45 सेकेण्ड तक उठक-बैठक लगा कर Heart rate (y) check कर लें। 1m आराम करें फिर Heart rate (z) check करें। फिर तीनों को जमा कर 200 उसमें घटा दे और उत्तर को 10 से भाग कर दे।

$$(x+y+z) - 200 = A$$

$$A/10 = 1-5 \text{ (उत्तम)}$$

$$= 5-10 \text{ (अच्छा)}$$

$$= 10-15 \text{ (ठीक)}$$

$$= 15-20 \text{ (रोगी)}$$

1-5 उत्तम, 5-10 अच्छा, 10-15 ठीक, 15-20 रोग से पीड़ित हैं।

चिकित्सक की सलाह ले इसी तरह का test

डॉक्टर करते हैं, जिसको T.M.T. कहते हैं, जो आप खुद कर सकते हैं। जितना बड़ा योगी होगा उसकी श्वास दर उतनी ही सूक्ष्म और दीर्घ होगी। वह उसे महसूस भी नहीं होगी। केवल भगवान अरिहन्त देव की श्वास इतनी सूक्ष्म होती है कि उनका पेट हिलना, ओंठ स्पन्दन, हृदय गति से सीना हिलना आदि कुछ भी नहीं होता है और न किसी को देखने में आता है। जो लोग खेती-बाड़ी का काम करते हैं या फिर खिलाड़ी होते हैं उनकी भी हृदय गति कम होती है। **योगी वह है जो श्वास सहज लेता है**, नियमित गति से उसकी श्वास चलती है। अन्य वन्य प्राणि जो कम या ज्यादा आयु जीते हैं यह उनकी श्वास गति पर निर्धारित होता है।

एक वैज्ञानिक शोध

पशु	नाम	श्वास दर प्रति मिनट	आयु (जीवन) वर्ष
	कछुआ	4	159-400
	व्हेल	6	111
	हाथी	4-5	70
	घोड़ा	8-15	50
	चिंपांजी	14	40
	बंदर	32	18-23
	कुत्ता	20-30	10-20



दस प्राण

दस प्राणों से हमारी चेतना के विकास का क्या सम्बन्ध है?

इसका उत्तर यह है कि ये दस प्राण तभी टिकते हैं जब इस भौतिक शरीर के भीतर चैतन्य प्राण रहता है। इस चैतन्य प्राण को निश्चय प्राण कहते हैं।

‘णिच्छयणयेदा दु चेदणा जस्स’ अर्थात् निश्चयनय से चेतना जीव का प्राण है।

चेतना का नाम ही चैतन्य महाप्राण है। इस चेतना के होने पर ही शरीर, इन्द्रियाँ, श्वास आदि होती हैं। इसीलिए प्राणी की मृत्यु के समय श्वास टूटती है, तो उसी के साथ चेतना-महाप्राण भी निकल जाता है और उस शरीर को मृत घोषित कर दिया जाता है। इससे फलित होता है कि चेतना मूल महाप्राण है जो अन्य सभी दस प्राणों से भिन्न स्वभाव वाला है।

ओ चेतन !

ओ चेतन! क्यों सोचता, क्या सोचें जग जीव ।
निज स्वभाव जाने बिना, लगता मोह सजीव ॥



Chapter 3.3 – प्राणायाम के भेदों का अभ्यास और विधि

प्राणायाम शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है-
प्राण + आयाम

प्राणों के आयाम मतलब उसकी **दीर्घता** या **लंबाई** की यहाँ पर मुख्यता रहती है। यहाँ जब प्राणों की बात की गई है तो मुख्यतः श्वासोच्छ्वास की ही है।

जब हमारा प्राण अर्थात् श्वासोच्छ्वास “आयाम” के साथ में हो यानी **दीर्घता** के साथ में हो और वह दीर्घता इस तरह की हो कि वह हमारे **नाभि को स्पर्श करे** तो वह सही प्राण कहलाता है। इस प्राणायाम की प्रक्रिया को करके ही हम अपने प्राणों का आयाम सही बना सकते हैं।

इसमें दो चीजें होती हैं-

एक- प्राणों का आयाम और

दूसरा- प्राणों की आने-जाने की गति
(उस गति पर ध्यान देना)

इस विषय पर एक श्लोक लिखा आता है-

सूक्ष्मप्राणयमायामः सन्नसर्वांगसंचर

प्रावोत्कीर्ण इवासीत ध्यानानन्दसुधां लिहन्

अर्थात् प्राणायाम शब्द को इस तरह भी देख सकते हैं-

प्राण यमाः यामेः

प्राण+ यम +आयाम

“**यम**” का अर्थ होता है- **प्रवेश होना** मतलब प्राणों का प्रवेश होना। आप जो सांस ले रहे हैं यह श्वास ही आपका एक प्राण है। प्राणों का या श्वास का प्रवेश होना, इसको **आगमन** कहते हैं और श्वास का बाहर निकलना, इसको **निर्गमन** कहते हैं। **ध्यान की उत्कृष्ट अवस्था तक पहुँचने के लिए श्वासोच्छ्वास प्राण के आगमन और निर्गमन (प्रवेश और निर्गम) की गति बहुत ही सूक्ष्म होनी चाहिए।**

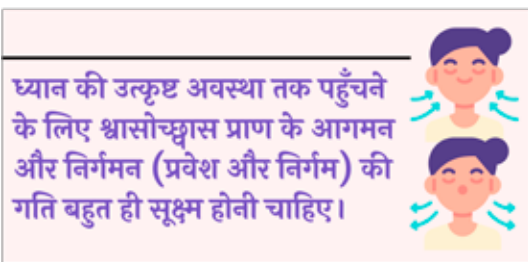
अन्य प्राणायाम में प्राणों की गति तेज हो सकती है जो व्यायाम या exercise के रूप में करते हैं, जिसमें बहुत ज्यादा सांस फूल भी जाती है, उसमें प्राणों की गति और अधिक तेज हो जाती है। वह एक physical level की क्रिया है परन्तु ध्यान के लिए नहीं। ध्यान के लिए प्राणों की गति सूक्ष्म ही होनी चाहिए। इतनी सूक्ष्म कि स्वयं को तो समझ में आए लेकिन सामने वाले को दिखाई न दे की आप सांस ले रहे हैं। इसलिए जो अरिहन्त बन जाते हैं उनके अन्दर जब यह अनन्त ज्ञान प्रकट हो जाता है तो उनकी सांस चलती है परन्तु उनकी सांस किसी को दिखाई नहीं पड़ती, बिल्कुल भी vibration नहीं होता।

जितना इन प्राणों की सूक्ष्मता के साथ में स्थिर होंगे उतना ही ध्यान की स्थिति में लंबे समय तक रह सकते हैं। अतः ध्यान में प्राणायाम की मुख्यता है क्योंकि बिना अपनी वायु का



नियंत्रण किए हुए कोई भी ध्यान नहीं कर सकता।

वायु अनेक प्रकार की होती हैं किन्तु मुख्य रूप से यह जो प्राणायाम रूप वायु है यह सूक्ष्म होनी चाहिए। इस सूक्ष्मता के साथ ही यह ध्यान का आयाम शुरू होता है इसलिए आचार्यों ने हमें समझाया है कि अपनी श्वास को एक तो हम दीर्घ रखे मतलब लंबा रखे और लंबा रखते हुए भी उसका जो आगमन और निर्गमन है वह बहुत सूक्ष्म होना चाहिए।



इस तरह **दो प्रकार के प्रणायाम** को जान सकते हैं-

1. **सूक्ष्म प्राणायाम** (ध्यान के लिए)
2. **स्थूल प्राणायाम** (Physical level पर)

सूक्ष्म प्राणायाम हम ऊपर समझ चुके हैं।

स्थूल से तात्पर्य यह हुआ की हम सांस ले रहे हैं और बार-बार ऐसा करना पड़ रहा है। इस हर एक प्रक्रिया में पेट फूल रहा है, अन्दर जा रहा है और यह movement और vibration भी अलग दिखाई दे रही है। दूसरी ओर सूक्ष्म सांस में इतने शान्त बैठें होंगे कि सांस की गति न स्वयं को समझ में आती है, न किसी दूसरे

को। स्वयं को समझ में आए तो सिर्फ इतना कि बिना ताकत लगाए हुए श्वास चल रही है।

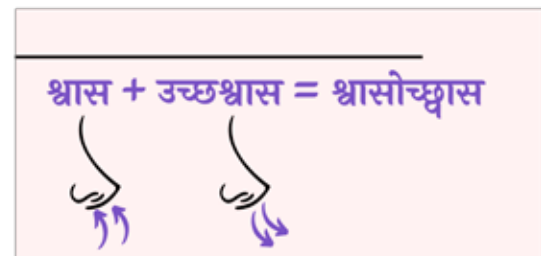
स्थूल प्राणायाम में अनुलोम-विलोम, भस्त्रिका, उज्जायी आदि किए जाते हैं।

श्वासोच्छ्वास क्या?

श्वास + उच्छ्वास = श्वासोच्छ्वास

श्वास- जो ले रहे हैं और उच्छ्वास- जो छोड़ रहे हैं।

इन दोनों के बीच में लय बननी चाहिए और इसकी लय इस तरीके से बननी चाहिए कि जिस गति से श्वास आ रही है उसी गति से श्वास जानी चाहिए। बिना प्रयास के भी यह प्रक्रिया सहज रूप से चलती रहनी चाहिए।



यही प्राणायाम का विज्ञान है। **प्राणायाम के लिए आसन की स्थिरता भी आवश्यक है।** जिसका आसन स्थिर होगा उसी के लिए यह श्वास स्थिर रहेगी और इस तरह से यह प्राणायाम -

- स्वयं के लिए,
- स्वयं के स्वास्थ्य के लिए, और
- स्वास्थ्य कब बिगड़ने वाला है

इसकी जानकारी के लिए भी होता है



अर्थात प्राण का यह आयाम जो निरन्तर चलता रहता है उसका भी अपना एक बड़ा महत्व होता है।

एक आयाम का महत्व उतना है कि जो व्यक्ति जितनी लंबी सांस लेता है, उसके लिए आयु पर भी उतना ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। मतलब वह उतना ही दीर्घायु होता है, जो जितनी देर बाद श्वास लेता है उसकी आयु भी उतनी ही और लंबी होती है। जो जितनी लंबी आयु वाला होगा उसकी श्वास का काल भी उतना ही दीर्घ होगा, दीर्घ मतलब उतनी देर बाद आएगा तो। बहुत सारे ऐसे तिर्यच है, जैसे कछुआ होता है, तो इस कछुए की श्वास का भी आयाम बहुत लंबा होता है और इसी कारण से इस कछुए की उम्र औसतन अन्य जीवों की उम्र से अधिक होती है। यह निर्भर करता है कि जो आप सांस ले रहे हैं, उसका प्रक्रम क्या है। प्राणायाम की प्रक्रिया से इन सब चीजों पर control होता है।

प्राणायाम अर्थात प्राण/वायु/नाड़ियाँ चलना, शरीर आश्रित क्रिया है (आत्मा आश्रित नहीं है), परन्तु ध्यान के लिए यह आसन के समान ही आवश्यक है।

प्राणायाम शान्त और सरल होना चाहिए, दुःख के साथ नहीं।

“मंदं मंदं क्षिपेद् वायुं, मंदं मंदं च विनिक्षिपेद्”

मंद मंद वायु अंदर लेना और मंद मंद ही छोड़ना।

प्राणायाम की प्रक्रिया दो चरणों में बताई गई है—

1. पद्म उत्थापन विधि

2. नाड़ी संचालन

“पद्मं उत्थापयेत्पूर्वं पश्चान्नाडीं च चालयेत्”

अर्थात - पहले अपने नाभिकमल को उत्थापित (जागृत/खिलाना/चंचल बनाना) करना चाहिए, उसके बाद नाड़ी संचालन करना चाहिए।

1. पद्म उत्थापन विधि -

यह प्राणायाम मन की चंचलता को कम करता है। पूरक-कुम्भक-रेचक के द्वारा **नाभी कमल** को उत्थापित (जागृत) करना।

2. नाड़ी संचालन विधि -

शक्ति देने वाला अभ्यास - इसमें मंद-मंद श्वास के साथ पूरक-कुम्भक-रेचक के द्वारा **हृदय कमल** को जागृत करते हैं।

3 प्रकार की नाड़ियाँ-

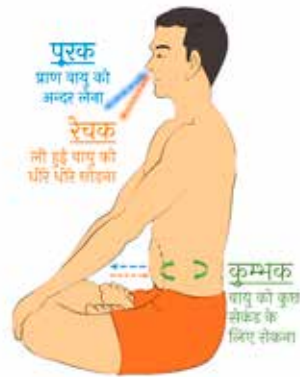
1. चन्द्र नाड़ी
2. सूर्य नाड़ी; एवं
3. सुषुम्ना नाड़ी



तीनों नाड़ियों का प्रवाह समान होने पर ध्यान में स्थिरता आती है।

विभिन्न प्रणायाम विधि -

पूरक, कुम्भक, रेचक-



स्थूल प्राणायाम के भेद

ऐश्वर्य प्राणायाम

नासिकाओं को बंद करने की विधि : दाएं हाथ को उठाकर दाएं हाथ के अंगूठे से दायां स्वर (दाईं और की नासिका) तथा अनामिका व कनिष्ठा उंगलियों के द्वारा बायां स्वर (बाईं नासिका) बंद करना चाहिए हाथ की हथेली को नासिका के सामने न रखकर थोड़ा ऊपर रखना चाहिए एवं प्रथम दो उंगलियों (तर्जनी व मध्यमा) को ज्ञान केंद्र पर रखना चाहिए।

इसको मंत्रों के आलाम्बन से करने पर यह **ऐश्वर्य प्राणायाम** (अनुलोम विलोम का variant) कहलाता है।

विधि -

पद्मासन, अर्धपद्मासन या सुखासन में शांत मुद्रा में बैठें। चेहरे पर मीठी सी मुस्कान।

बाएं(Left) हाथ को ज्ञान मुद्रा में घुटने के उपर रखें

प्रक्रिया को दाएं(Right) हाथ से करें

1. **पूरक** - श्वास(प्राणवायु) को धीरे-धीरे अन्दर लेना

2. **कुम्भक**- वायु को पेट में धीरे-धीरे रोकना

(वायु रोकने पर पेट कुम्भ के आकार का होगा। विशेष सावधानी- श्वास सरलता से रोके, जबरदस्ती अधिक समय तक न रोके)

3. **रेचक** - श्वास को धीमे-धीमे छोड़ना।

1. ऐश्वर्य प्राणायाम बाईं नासिका से



प्रारंभ करते हैं।

2. सर्वप्रथम बाई नासिका से श्वास लेते हुए (ध्यान रहे दाई नासिका इस समय पर अंगूठे से बंद है) **ओं** का स्मरण करना तत्पश्चात अनामिका और कनिष्ठा से बाई नासिका बंद करना अंगूठा दाई नासिका से हटाना एवं सांस छोड़ते हुए **अहं** का स्मरण करना।
3. जिस दाई नासिका से हमने अभी सांस छोड़ी है उसी दाई नासिका से श्वास लेते हुए **ओं** का स्मरण करना पुनः अंगूठे से दाई नासिका बंद करके बाई नासिका से श्वास छोड़ते हुए **अहं** का स्मरण करना।

यह अभ्यास 10-15 बार करें।

विशेष बात बाई नासिका से शुरू कर के बाई पर ही खत्म होता है।

सावधानी : श्वास इतनी धीरे लेना चाहिए कि श्वास का स्पर्श हमारे हाथों तक को अनुभव में ना आए। एवं रीड की हड्डी पूरी तरह सीधी हो। उत्तम आसन- पूर्ण पद्मासन (नहीं लगा सकते हैं तो अर्थ पद्मासन या सुखासन)

भस्त्रिका

भस्त्रिका का मतलब है 'धौंकनी'।

इस प्राणायाम में सांस की गति धौंकनी की तरह हो जाती है। जैसा लोहार हवा के तेज़ झोको से गर्मी पैदा करता है और लोहे को शुद्ध करता है, **भस्त्रिका प्राणायाम** उस ही तरह मन

को साफ और प्राणिक बाधाओं को हटाता है।

श्वास की प्रक्रिया को जल्दी-जल्दी करना ही भस्त्रिका प्राणायाम कहलाता है।

विधि -

पद्मासन, अर्धपद्मासन या सुखासन में शांत मुद्रा में बैठें। चेहरे पर मीठी सी मुस्कान।

1. कमर, गर्दन, पीठ एवं रीढ़ की हड्डी को सीधा रखते हुए शरीर को बिल्कुल स्थिर रखें।
2. दोनों हाथों से ढीली मुट्ठी बनाए और उन्हें कंधों के बगल में रखें।
3. तत्पश्चात श्वास लेते हुए **अहं** का स्मरण करते हुए दोनों हाथों को ऊपर ले जाना एवं मुट्ठी को खोलकर हाथों को खोलना और

4. नमः का स्मरण करते हुए पुनः हाथों को नीचे लाना और तीव्र गति से श्वास को नासिका से छोड़ना।

कम से कम 15 बार **अहं नमः** के स्मरण के साथ आवृत्ति करें।

उत्तम आसन-- वज्रासन/पद्मासन/सुखासन

सावधानी: रीड की हड्डी एकदम सीधी रखें और जब हाथों को तीव्र गति से श्वास छोड़ते हुए नीचे लाएँ तब शरीर में हलचल ना हो, शरीर स्थित ही रहे और हाथों पर भी बहुत ज्यादा झटका नहीं लगना चाहिए।

पंच केंद्र प्राणायाम

यह शरीर के पाँच केंद्रों को जाग्रत



करने की एक सहज परंतु बहुत ही सशक्त प्रक्रिया है जो हमें ध्यान की स्थिति में पहुँचाता है।

विधि -

पद्मासन, अर्धपद्मासन या सुखासन में शांत मुद्रा में बैठें। चेहरे पर मीठी सी मुस्कान।

हाथ ज्ञान मुद्रा में हो या जिन मुद्रा में यानि नाभि के पास बाएं हथेली के उपर, दाएं हथेली रखी हुए हुई

1. पूरा ध्यान आपके नासिका के छिद्रों पर, केवल अपनी आती और जाती श्वास को देखें।
2. नियंत्रित न करें।
3. अब पूरक करते हुए श्वास को शक्ति केंद्र तक ले जाएँ (नाभि तक)।
4. श्वास लंबा हो, गहरा हो पर शांत हो।
5. नाभि के स्पंदन के अलावा कहीं शरीर का कोई अंग न हिले।
6. श्वास को कुम्भक के माध्यम से पेट में रोक कर रखें, **ओं अर्ह नमः** का मन ही मन स्मरण करें और बहुत धीरे - धीरे नासिका से श्वास छोड़ दें।

इस क्रिया को 9 बार दोहराएँ

इस क्रिया को पाँचों ही केंद्रों पर दोहराएँ

जब हम ज्ञान केंद्र या सिद्धी केंद्र पर ध्यान केंद्रित करें तो श्वास को ऊपर की ओर ले जाने का प्रयास करें।

यह थोड़ा कठिन है पर नियमित अभ्यास से संभव है।

सावधानी- श्वास को बहुत ही सहज लेना है। रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी हो और चेहरे पर कहीं कोई तनाव ना हो। मंत्र का मन ही मन स्मरण करना है। उच्चारण नहीं करना

लाभ

- पूरे शरीर से तनाव को दूर करता है।
- विद्यार्थियों के लिए अति लाभकारी।
- आलस्य को दूर करता है।
- मांसपेशियों के खिंचाव को दूर करता है।
- Concentration बढ़ाता है।
- मानसिक तनाव और रोगों में अति लाभकारी।
- चित्त को शांत कर ध्यान करने में सहायक।



कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग बैठकर, खड़े होकर दो ही तरीके से किया जाता है।

कायोत्सर्ग करने के लिए श्वासों पर पूर्ण ध्यान देते हुए मात्र श्वास को सावधानी से गिनना होता है।

विस्तृत जानकारी के लिए UNIT-2 के Chapter-3 पर जाएँ

श्वास लेते हुए 'ओं',
छोड़ते हुए 'अर्ह'



Chapter 3.4 – नाड़ी के प्रकार एवं महत्व

शरीर की तीन मुख्य नाड़ियाँ और नाड़ी शुद्धि है।



वैसे तो शरीर में 72000 नाड़ियाँ फैली हुई होती हैं लेकिन उनमें तीन नाड़ियाँ मुख्य होती हैं। जो नाड़ी हमारी रीढ़ की हड्डी के **left side** से चलती है, उसे **इडा नाड़ी** कहा जाता है और उसी को हम चन्द्र स्वर भी कहते हैं। एक दूसरी नाड़ी जो चलती है, जब वायु का प्रवाह आप देखेंगे मेरुदण्ड अर्थात् spinal cord, उसके **right side** से चलेगा तो वह कहलाएगी **पिंगला नाड़ी** चलना, उसको बोलते हैं **सूर्य स्वर**। जब आपकी नाक में right side की Nostril से ही आप श्वास ले रहे हो और श्वास छोड़ रहे हो तो समझना सूर्य स्वर चल रहा है मतलब पिंगला नाड़ी चल रही है, अभी प्रवाह में पिंगला नाड़ी है। जब आपकी left side के Nostril से हवा चल रही हो, उसी से आप श्वास ले रहे हो उसी से छोड़ रहे हो तो समझना चन्द्र स्वर चल रहा है और इडा नाड़ी प्रवाह में

जो तीसरी नाड़ी होती है वह होती है **सुषुम्ना नाड़ी**, यह मध्यम स्वर कहलाता है। यह जब चले तो मतलब होता है कि अब आप योग करने की, ध्यान करने की स्थिति में हैं। यह बहुत कम चलता है, बहुत कम समय के लिए चलता है, भोगियों के लिए तो यह चलना मुश्किल होता है और योगियों के लिए यह चल पाना कठिन होता है। जितना भी प्राणायाम किया जाता है, यह सब इसी सुषुम्ना में अपने प्राण वायु को बहाने के लिए और सुषुम्ना नाड़ी में ही प्राणों को स्थिर करके, उसको रोकने के लिए प्राणायाम की प्रक्रिया की जाती है। यह साधक का उद्देश्य होता है लेकिन जैसे ही हम प्राणायाम करने लग जाते हैं तो सबसे पहले एक चीज आती है नाड़ी शुद्धि।

प्राणायाम के माध्यम से सबसे पहले नाड़ी शुद्धि होती है। नाड़ी शुद्धि का मतलब है- हमारी नाड़ी अनेक प्रकार के मैल या मल से लिप्त होती है, उसमें से जब मल अलग हट जाता है, तो नाड़ी शुद्ध होती है। उस नाड़ी के शुद्ध होने पर हमें प्राणायाम सिद्ध हो जाता है। सभी नाड़ियाँ हमें शुद्ध करने की जरूरत नहीं है। केवल ये तीन नाड़ियाँ ही शुद्ध करना है।

कुम्भक, रेचक और पूरक के अभ्यास से ये तीनों नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं। (जिसका वर्णन पिछले पाठ में किया जा चुका है)। आपकी जितनी सामर्थ्य हो उतनी करना क्योंकि अगर



यह सही ढंग से किया जाता है तो लाभ भी देता है और अगर अज्ञानता से किया जाता है, गलत ढंग से किया जाता है, तो इसके नुकसान भी होते हैं।

नाड़ी शुद्धि के फायदे

अपने मन से जो बिना ज्ञान के कुछ किया जाता है, तो उससे अनेक प्रकार की हानियाँ भी पैदा हो सकती हैं। यह जो नाड़ी शुद्धि का अभ्यास किया जाता है, इसमें ऐसा बताया जाता है कि यह अभ्यास आपको इसी पूरक, कुम्भक, रेचक के माध्यम से दिन में तीन बार और एक रात्रि के मध्य भाग में, चार बार चौबीस घण्टे में आपको करना चाहिए। अगर रात्रि में सम्भव न हो तो दिन में भी तीन बार आपको यह नाड़ी शुद्धि के लिए अभ्यास करना चाहिये और यह पूरक, कुम्भक, रेचक इसके आपको अस्सी round एक बार में पूरे करने है। अस्सी round एक बार में आप करेंगे तो एक time का यह आपका अभ्यास होगा। ऐसा करते-करते मान लो आपने दिन में तीन बार भी किया तो $80 \times 3 = 240$ हो गये। इतने प्राणायाम यदि आप प्रतिदिन तीन महीने तक करेंगे तो आपकी पूरी 72000 नाड़ियों के जो ये स्रोत हैं, तीनों प्रकार की नाड़ियाँ, ये नाड़ियाँ शुद्ध हो जाएँगी।

शुद्ध से मतलब यह है कि जब आपकी नाड़ी शुद्ध हो जाएगी तो फिर आपके शरीर में कोई भी रोग टिक नहीं पाएगा।

- रोगों की उत्पत्ति का कारण ही नहीं होगा
- आपकी आयु पूर्ण होगी

- शरीर में कान्ति होगी
- शरीर हल्का होगा
- जो extra fat है, वह सब अपने आप चला जाएगा।
- मोटापा अपने आप दूर हो जाएगा

आप को कोई भी exercise अलग से करने की जरूरत नहीं है। इतना ही पर्याप्त है और यह उसके लक्षण आगे बताए जाएँगे। जब आपको प्राणायाम करते-करते इस तरीके से होने लगे तो उसके और क्या-क्या लक्षण होते हैं? मतलब

- शरीर में कान्ति बढ़ जाना
- नेत्र ज्योति बढ़ जाना
- शरीर में स्थिरता आ जाना
- मल-मूत्र का अल्प हो जाना
- पाचन शक्ति बढ़ जाना
- स्वर सौम्यता मतलब स्वर भी जो आप बोलते हैं, अच्छा हो जाना
- स्वर मधुर हो जाना

यह सब चीजें उसमें आ जाती है। यह सब जो है नाड़ी शुद्धि के प्रयोजन हैं। नाड़ी शुद्धि होने पर ये सब काम होने वाले हैं।

सगुण स्वर और निर्गुण स्वर

प्रवेश के समय पर होने वाले स्वर को **सगुण** स्वर कहते हैं

निर्गमन के समय होने वाले स्वर को **निर्गुण**



स्वर कहते हैं

निर्गुण स्वर



सगुण स्वर



स्वर का बहना दो तरीके से चलता रहता है। एक स्वर जो हमारी नासिका से बाहर निकलता है और एक स्वर वह जो नासिका में प्रवेश करता है।

प्रवेशकाले

प्रवेशकाले- जिस समय स्वर नासिका में प्रवेश करता है चाहे वो चन्द्र स्वर हो या सूर्य स्वर हो, वह नासिका में प्रवेश करते समय शुभ होता है और जो भी आप मन में सोचेंगे उस फल को देने वाला होता है। मनोगत फल को पूर्ण करने वाला होता है। यानि कोई भी स्वर आप उसको ग्रहण कर रहे हैं, वह आपके लिए प्रवेश हो रहा है, श्वास के प्रवेश करते समय जो आप मन में विचार करेंगे तो वह फल देगा।

निःसरण

निर्गमन के काल में **निःसरण** की बेला में वही अशुभ के रूप में कहा जाता है। **निःसरण** की बेला में जिस समय पर वह निकल रहा होता है उस समय आप कुछ काम सिद्ध करने की सोचेंगे तो वह काम बिगड़ेगा, ऐसा कहने का तात्पर्य है।

अर्थात् प्रवेश काल में तो मनोगत फल देने

वाला मतलब मन में जो भी इच्छा करोगे, विचार करोगे फल मिलेगा। अगर वही विचार आपने स्वर निकलते समय पर किया है, तो **अहितमतिदुःखनिचितं** वह अहित करने वाला होगा, अति दुःख देने वाला होगा।

उदये वामा शस्ता

सितपक्षे दक्षिणा पुनः कृष्णे ।

त्रीणि त्रीणि दिनानि तु

शशिसूर्यस्योदयः श्लाघ्यः ॥३८॥

उदये- माने सूर्य के उदय की बात चल रही है, यहाँ पर। सुबह-सुबह सूर्य उदय के समय **वामा** माने दक्षिण भाग की नाड़ी, **शस्ता** माने प्रशस्त है, **सितपक्षे** माने शुक्ल पक्ष में, **दक्षिणा पुनः कृष्णे**, कृष्णपक्ष में rightside सूर्य स्वर की नाड़ी प्रशस्त है। **त्रीणि त्रीणि दिनानि तु** यह तीन-तीन दिन के क्रम से ऐसा जानना। **शशिसूर्यस्योदयः श्लाघ्यः** तीन-तीन दिनों में क्रम-क्रम से **शशि** माने चन्द्रमा का और सूर्य का श्लाघ्यनीय है, प्रशंसनीय है या मान्य है, ऐसा जानना चाहिए।

शुक्ल पक्ष में सुबह के शुभ स्वर

यदि **शुक्ल पक्ष** चल रहा है। शुक्ल पक्ष की एकम, दूज और तीज सुबह-सुबह आप देखें। जब आप सुबह सो करके उठते हैं, उस समय आपका स्वर शुक्ल-पक्ष में चन्द्र स्वर चलना चाहिए। तब समझना आपके लिए शुभ है, आपको कोई रोग इत्यादि नहीं है या आज नहीं होंगे। तीन दिन तक आप जो भी काम करेंगे, आपका वह काम सफल होगा।



- फिर उसी शुक्ल पक्ष में चौथ, पंचमी, छठवीं - सूर्य स्वर
- सप्तमी, अष्टमी, नवमी - चन्द्र स्वर फिर चलना चाहिए
- दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं - सूर्य स्वर चलना चाहिए
- तेरस, चौदस, पंद्रस, पूर्णिमा - चन्द्र स्वर चलना चाहिए।

हमने देखा कि एकम चन्द्रमा से शुरू करने के बाद चन्द्रमा पर ही जा कर पूर्ण किया। तीन-तीन दिनों के क्रम से सुबह सूर्य के उदय को ले कर अगर आप की नाड़ी सही चलती है, तो यह आपके लिए अच्छा है, शुभ है। यह शुक्ल पक्ष की बात है।

कृष्ण पक्ष में सुबह के शुभ स्वर

ऐसे ही कृष्ण पक्ष की बात है। कृष्ण पक्ष हो तो सुबह-सुबह क्या चलना चाहिए-

- एकम, द्वज, तीज - सूर्य स्वर चलना चाहिए
- चार, पाँच, छः - चन्द्र स्वर चलना चाहिए
- सात, आठ, नौ - सूर्य स्वर
- दस, ग्यारह, बारह - चन्द्र स्वर
- तेरह, चौदह, अमावस्या (पन्द्रस) - सूर्य स्वर

इस तरह तीन-तीन दिनों के क्रम से जो यहाँ ज्ञान दिया गया है अगर हम उसका भी ध्यान रखते हैं तो वह भी हमारे जीवन में काफ़ी कुछ मदद करने वाला है।

	शुक्ल	कृष्ण
एकम	चन्द्र	सूर्य
द्वज	चन्द्र	सूर्य
तीज	चन्द्र	सूर्य
चौथ	सूर्य	चन्द्र
पंचमी	सूर्य	चन्द्र
छठवीं	सूर्य	चन्द्र
सप्तमी	चन्द्र	सूर्य
अष्टमी	चन्द्र	सूर्य
नवमी	चन्द्र	सूर्य
दसवीं	सूर्य	चन्द्र
ग्यारहवीं	सूर्य	चन्द्र
बारहवीं	सूर्य	चन्द्र
तेरस	चन्द्र	सूर्य
चौदस	चन्द्र	सूर्य
पूर्णिमा/ अमावस्या	चन्द्र	सूर्य

अब कभी-कभी यह भी हो सकता है कि आपको ऐसा लगता है कि जैसे स्वर चल रहे हैं और कभी-कभी ऐसा लगता है कि दोनों चल रहे हैं। वस्तुतः दोनों एक वेग से भी कभी-कभी चलते हुए दिखाई दे सकते हैं और कभी आपको लगेगा कि एक में वेग ज़्यादा है और एक में वेग कम है। एक तो यह है कि पूरा का पूरा चन्द्र स्वर ही चल रहा हो या पूरा का पूरा सूर्य स्वर ही चल रहा हो वह तो समझ में आ जाएगा।

कभी-कभी एक में वेग कम होता है, एक में वेग ज़्यादा होता है तो जो ज़्यादा वाला चल



रहा हो, वही स्वर मानना चाहिए कि वही चल रहा है। ऐसा तो बहुत कम होता है, जब दोनों स्वर एक साथ चल रहे हो। दोनों समान वेग से चल रहे हो तो वह कहलाएगी कि **सुषम्ना नाड़ी** चल रही है।

सुबह उठते हुए क्या ध्यान रखना?

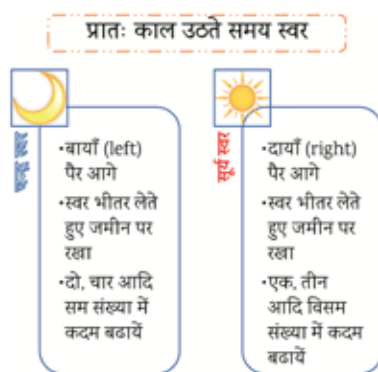
जब आप सुबह-सुबह उठते हैं तो उसमें यह भी ध्यान रखा जा सकता है कि जो स्वर चल रहा हो, उसी स्वर वाले भाग में, सबसे पहले आपको पैर उठा कर ज़मीन पर रखना है, तो उसी स्वर वाले भाग का पैर आगे करके पहले खड़े हो।

जैसे चन्द्र स्वर में आपको उठना है और चन्द्र स्वर चल रहा है, तो आप पहले अपना left side का पैर बिस्तर से उठकर जमीन पर रखें। उसके बाद में अगर यह चन्द्र स्वर है, तो पहले आपने एक पैर रख दिया, अब इसके बाद आप दो, चार सम संख्या में पैर आगे रख करके फिर उसके बाद अपनी गति सामान्य रूप से बना सकते हैं।

अगर सूर्य स्वर चल रहा हो तो एक या तीन कदम, पहले एक, दो, तीन या केवल एक कदम पहले मतलब उस स्वर के साथ में जोर से पृथ्वी पर पैर रखते हुए और स्वर को भीतर लेते हुए पहले पैर रखेंगे और उसके बाद एक कदम चलेंगे, तब उसके बाद आप अपनी गति सामान्य बना सकते हैं।

इतना सुबह-सुबह ध्यान रख कर आप अपने दिन को नियोजित कर सकते हो। ऐसा है, अगर तिथि के अनुसार स्वर नहीं चल रहा है, तो वह दिन अच्छा नहीं है। इसका मतलब यह

हो सकता है कि उस दिन आपको किसी भी कार्य में सफलता न मिले।



उसमें यह बताया जाता है कि मान लो एक दिन नहीं चला कोई बात नहीं, अगर लगातार तीन दिन तक आपको उल्टा दिखाई दे तो आप चेत जाओ कि आपको कोई न कोई नुकसान होने वाला है।

शुक्ल पक्ष में विपरीत स्वर चलने से हानि

**व्यस्तः प्रथमे दिवसे
चित्तोद्वेगाय जायते पवनः ।**

**धनहानिकृद द्वितीये
प्रवासदः स्यात्तृतीयेऽहि ॥४१॥**

व्यस्तः मतलब उल्टा यह चलने लगे **प्रथमे दिवसे** प्रथम दिवस में, पवन अगर प्रथम दिवस में विपरीत चले, विपरीत का अर्थ? शुक्ल पक्ष चल रहा है और पवन चन्द्र नाड़ी की न चल कर, सूर्य नाड़ी चल रही है, आचार्य यहाँ कह रहे हैं कि पहले दिन तो चित्त में उद्वेग होगा। क्या रहेगा? चित्त में शान्ति नहीं रहेगी।

भीतर आपके कुछ न कुछ चिन्ता, खलबली, भय, भीतर से कोई न कोई दुःख का भाव चल



रहा होगा, जैसे- आप कहते हैं, आज मेरा मन नहीं लग रहा। रोजाना भगवान को देखते हैं, पूजा करते हैं, प्रवचन सुनते हैं, आज पता नहीं क्या, अच्छा सा नहीं लग रहा, मन नहीं लग रहा है। वही भगवान हैं, वही पूजा, सब कुछ वही है- इसको कहते हैं- चित्त का उद्वेग। वही चीज जो रोजाना आप कर रहे हैं, अच्छी लग रही है और अगर आप के लिए उल्टा होगा तो वह चित्त में उद्वेग पैदा करता है। उद्वेग के कारण चित्त में शान्ति नहीं होगी तो आपको किसी भी काम में अच्छा नहीं लगेगा।

आप कहते हो आज पता नहीं क्यों मन अच्छा नहीं है। इसलिए सुबह से ही ध्यान रखो, दिन भर हमारा मन अच्छा रहे। चित्त प्रसन्न रहेगा तो इसी क्रम से रहेगा। इसको चित्त की प्रसन्नता कहते हैं। पहले के लोग कोई भी काम करते थे तो यह बताया जाता था कि चित्त प्रसन्न हो तब यह काम करो। चलो मान लो आपको स्वयं का कोई ज्ञान नहीं है, चित्त प्रसन्न हो तब वह काम करो। आप इतना भी ध्यान रखेंगे तो भी आप अपने को सफल बना लेंगे।

चित्त तभी प्रसन्न होगा जब आपका सही स्वर चल रहा होगा

बच्चे से आप कहते हो कि पढ़ो! पहले उसका चित्त तो देख लो प्रसन्न है कि नहीं। अगर उसका चित्त प्रसन्न होगा तो वह पढ़ने बैठेगा, टिक के पढ़ पाएगा, आधा घण्टा पढ़ पाएगा, एक घण्टे पढ़ पाएगा। अगर उसका चित्त प्रसन्न नहीं है तो तुम जबरदस्ती उसको बैठा दोगे, नहीं पढ़ेगा। टेबल पर बैठ भी जाएगा तो वह देखता रहेगा कि जब तक मम्मी उसके सामने घूम रही है तब

तक नीचे निगाह करे रहेगा और ज्यों ही उसने देखा कि घर में कोई नहीं है, सब इधर-उधर हो गये हैं तो शुरू हो जाएगा या तो टी वी ON करेगा या मोबाइल ON करेगा।

चित्त में उद्वेग होने पर कोई भी कार्य में मन लगता ही नहीं है और वह सब अपने लिए बुरा-बुरा ही करेगा, हानिप्रद काम करेगा, उसका मन किसी में नहीं लगेगा। इसलिए कहा जाता है कि आपके चित्त की प्रसन्नता होगी तो हर काम आप सही ढंग से कर पाएँगे, सफल होगा।

धनहानिकृद द्वितीये अगर मान लो लगातार दो दिन, वही शुक्ल पक्ष में सूर्य स्वर चल रहा है, तो आपके लिए धन की कुछ भी हानि हो सकती है। व्यापार में नुकसान भी लग सकता है, share market बहुत down भी हो सकता है। जितना बरसों में पहले कभी नहीं हुआ उतना down हो गया। यह भी किस कारण से? जिन्होंने अपना पैसा फँसा रखा है तो उनके लिए भी धन हानि का यह प्रसंग आ जाता है। दूसरे दिन यह हो गया।

प्रवासदः स्यात्तृतीयेऽहि अगर तीसरे दिन भी आपका स्वर विपरीत चल रहा है, तो आप घर में टिक नहीं पाओगे। आपको कहीं दूसरी जगह प्रवास करना पड़ेगा। यह आपको घर से बाहर निकाल देगा। घर से बाहर निकालने का मतलब कि आपको कहीं यात्रा पर जाना पड़ेगा या आपको कहीं और दूसरी जगह प्रवास करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। आपको घर में नहीं रखा जाएगा।



शुक्लपक्ष में सूर्य स्वर चलने की हानि

- ▶ प्रथम दिन चित्त में उद्वेग होगा। काम में मन नहीं लगेगा
- ▶ लगातार दूसरे दिन चलने से धन हानि हो सकती है।
- ▶ लगातार तीसरे दिन चलने से आपको दूसरी जगह प्रवास के लिए या यात्रा पर जाना पड़ेगा
- ▶ लगातार पाँच दिनों में पाँच चीजें प्रकट हो जायेंगी - इष्ट नाश, अर्थ नाश, पद से भ्रष्ट होने, महायुद्ध होना और दुःख होना



वामा सुधामयी ज्ञेया

हिता शश्रच्छरीरिणाम्।

संहर्त्री दक्षिणा नाडी

समस्तानिष्टसूचिका ॥43॥

आचार्य यहाँ कह रहे हैं, **वामा** नाड़ी मतलब चन्द्र स्वर जो है, यह हमेशा **सुधामय अर्थात्** अमृतमय है, हमेशा जीवों के लिए हित रूप है। जो दक्षिणा नाड़ी है, सूर्य नाड़ी है, यह अहित करने वाली है, यह संहार स्वरूप जाननी चाहिए। यहाँ आपको उसके आगे बता रहे हैं कि आप सामान्य रूप से अपना जीवन चलाना चाहते हैं तो अगर आपकी चन्द्र नाड़ी चल रही है और आप कोई भी शुभ काम करना चाहते हैं तो आप कर ले बस। चन्द्र नाड़ी बह रही है, तो शुभ काम की शुरुआत है और आपके लिए सभी अच्छे फल देगी, अमृत स्वरूप है। अगर सूर्य नाड़ी हो तो वह अनिष्ट की सूचक है। यह सामान्य विज्ञान है। फिर आगे कहते हैं:-

नाडी का सामान्य विज्ञान

चन्द्रवाडी में काम की शुरुआत अच्छा फल देगी।
यह अमृतमय होती है
सूर्य नाडी अशुभ का सूचक है

प्रयास से चन्द्र नाड़ी को चलाया जा सकता है

अगर बायीं नाड़ी, चन्द्र स्वर चल रहा हो तो यह शरीर को क्या करेगा? अमृत के समान प्रसन्न रखेगा। इसलिए यह कहा जाता है कि दिन में आपके लिए चन्द्र स्वर चलना चाहिए, left स्वर की नाड़ी चलना चाहिए, left स्वर चलना चाहिए।

दिन में जितना ज़्यादा से ज़्यादा चन्द्र स्वर चलेगा उतना ही वह आपके शरीर को प्रसन्न बनाए रखेगा, शरीर को निरोग बनाए रखेगा।

अगर लगातार बहुत समय तक दक्षिण नाड़ी, right side की नाड़ी चलती है, तो उस से शरीर क्षीण होने लग जाता है। हर स्वर के परिवर्तन का काल आता है और हर स्वर एक-एक घण्टे में परिवर्तित होता है। एक घण्टे में आपका चन्द्र से सूर्य, सूर्य से चन्द्र परिवर्तित होता रहता है।

क्या आप जानते हैं?

- ▶ हर स्वर एक-एक घंटे में परिवर्तित होता है
- ▶ एक घंटे में आपका चन्द्र से सूर्य और सूर्य से चन्द्र परिवर्तित होता है
- ▶ विशेष प्रयासों से हम इसे बदल सकते हैं और अधिक समय तक चन्द्र नाड़ी या सूर्य नाड़ी चला सकते हैं



ज्वर और सिर दर्द में आराम

बुखार के समय, सर दर्द के समय जो नाड़ी चल रही हो उससे उल्टी नाड़ी चलने से आराम मिलता है

अब यह आपके विशेष प्रयासों के ऊपर है कि जब चन्द्र से सूर्य हो तो वह एक घण्टे तक भी चल सकता है। आप उसे अपने प्रयास से रोक भी सकते हैं और उससे चन्द्र नाड़ी भी चला सकते हैं। इस तरह के प्रयास से क्या होगा कि आपके शरीर की निरोगता या शरीर की प्रसन्नता है वह निरन्तर बनी रहेगी और वह आपको रोग आदि से दूर रखेगी। कभी-कभी यह भी होता है कि मान लो आपको ज्वर आ रहा हो तो उस समय जो आपकी नाड़ी चल रही है, आप उससे उल्टी चलाओ। क्या कहा गया? बुखार जब आ रहा हो, सिरदर्द या ज्वर हो रहा हो तो जो नाड़ी चल रही हो, अगर आप उससे उल्टी चलाओगे तो आपको उसमें बहुत relief मिल जाएगा। अब वह कोई भी हो, उस समय मान लो बुखार के समय दिन में चन्द्र भी चल रहा है तो आपको सूर्य चलाना पड़ेगा। बुखार के समय या सिर दर्द के समय जो नाड़ी चल रही हो उसके विपरीत चलाना शुरू करो तो वह आपके लिए शुभ होगा। प्रयोजन के साथ कुछ काम हमें अलग-अलग से भी इस तरह

चन्द्र / Left Pranayam	सूर्य / Right Pranayam
चन्द्र अर्थात् शीतलता बढ़ेगी	सूर्य अर्थात् गर्मी बढ़ेगी
पित्त प्रकृति में लाभदायक	पित्त के रोगों में नुक्सानदेह
कफ प्रकृति में नुक्सानदेह	कफ के दोषों में लाभकारी

से करने पड़ते हैं। ये सामान्य नियम बताए जा रहे हैं।

चन्द्र की नाड़ी शुभ है, सूर्य की नाड़ी भी शुभ होती है कुछ कार्यों के लिए, वह आगे बताया जाने वाला है। एकान्त रूप से सूर्य की नाड़ी अशुभ ही नहीं होती है। यह भी बताया जाने वाला है कि सूर्य की नाड़ी कहाँ शुभ है और चन्द्रमा की नाड़ी किन-किन कार्यों में शुभ होती है।

सूर्य नाड़ी भी कुछ कामों में शुभ है

क्या कह रहे हैं, दक्षिण नाड़ी मतलब सूर्य नाड़ी इन कामों में शुभ है। राजा लोग युद्ध करने जाते हैं, military के जवान भी युद्ध करने जाते हैं। आप युद्ध करने जा रहे हो और अब मान लो युद्ध नहीं करना, आपको यदि अपने किसी शत्रु के घर में प्रवेश करना है, तो उस समय भी यह सूर्य नाड़ी आपके लिए लाभदायक है। किसी ऐसे व्यक्ति से बातचीत करनी है जो आपका बहुत द्वेषी है, दुष्ट है, तो उसमें भी आपके लिए यह सूर्य नाड़ी लाभदायक है। क्योंकि इसमें यह बताया जाता है कि जितने भी क्रूर कार्य होते हैं और चर कार्य होते हैं उनमें सूर्य नाड़ी का उपयोग किया जाता है।

जितने भी शान्त और स्थिर कार्य होते हैं उनमें चन्द्र नाड़ी का उपयोग किया जाता है।



सूर्य स्वर के कार्य

- ▶ शत्रु के घर में प्रवेश
- ▶ द्वेषी व्यक्ति से बातचीत
- ▶ क्रूर कार्यों में
- ▶ स्त्री सम्भोग आदि
- ▶ चर (अस्थिर) कार्यों में
- ▶ दूकानदार के लिए माल खरीदने में
- ▶ उधार लेना या देने में
- ▶ मेहनत के कार्य में
- ▶ भोजन करने में



चर कार्य और क्रूर कार्य।

चर कार्य का मतलब होता है, जो काम हमें हमेशा के लिए स्थिर नहीं रखना है। अभी कुछ समय के लिए करना है और फिर उसे छोड़ देना है। वे चर कार्य समझे जाते हैं। क्रूर कार्य किसी से युद्ध करना हो, किसी से बदला लेना हो, किसी को अपने दबाव में डालना हो, जबरदस्ती अपनी बात मनवानी हो तो ये सब काम या कोई और दूसरे क्रूर कार्य मान लो कई लोग ऐसे भी होते हैं, किसी क्रूर कार्य के लिए विद्या की सिद्धि कर रहे हों, मन्त्र की सिद्धि कर रहे हों, क्रूर प्रयोजन के साथ में आपको कोई शास्त्र पढ़ना पड़ रहा हो तो वे सब काम भी इसी सूर्य नाड़ी में करने पड़ेंगे।

क्रूर कार्य कभी भी चन्द्र नाड़ी के साथ नहीं हो सकते हैं। जो लोग कभी भी दूसरों के साथ

बुरा व्यवहार करते हैं, अत्याचार करते हैं, मारते हैं, नियम से इसी नाड़ी में ही वे यह काम कर पाएँगे, चन्द्र नाड़ी नहीं चल पाएगी। सूर्य नाड़ी के ये कार्य हैं और भी बहुत से कार्य हैं। जैसे मान लो आप कुछ चीजें खरीदते भी हैं और बेचते भी हैं। मान लो आपने माल खरीदा चन्द्र स्वर में, तो क्या होगा? वह माल आपके यहाँ स्थिर हो गया। सूर्य स्वर में खरीदोगे तो क्या होगा, खरीदने के साथ में बिक भी जाएगा। क्रय-विक्रय में भी यह ध्यान रखा जाता है। चन्द्र स्वर में अगर माल खरीदा है तो क्या होगा- स्थिर कार्यों के लिए है चन्द्र स्वर। आपको दुकान चलानी है, तो माल आना है, जाना है, तो हमें क्या करना है, माल को सूर्य स्वर में ही, सूर्य नाड़ी में ही अपने को खरीदना है, तो वह निकल भी जाएगा। आएगा, जाएगा, निकल जाएगा।

उधार लेना है आपको तो वह अगर आपने चन्द्र स्वर में लिया तो क्या होगा- कभी उधार चुकेगा नहीं, हाँ वह परेशान करता रहेगा आपको। तो क्या करना पड़ेगा, उधार कभी भी चन्द्र स्वर में न लेकर सूर्य स्वर में ही उधार लेना पड़ेगा। ऐसे काम की भी है यह नाड़ी, ऐसा नहीं है कि सूर्य नाड़ी में हमेशा नाश ही होता है। तो कुछ काम जो चर कार्य हैं या क्रूर कार्य हैं, उसमें सूर्य नाड़ी का उपयोग किया जाता है।

अब उधार ले लिया और उधार दिया, अब दिया भी तो लौट के आना चाहिए न। वह भी इसी में होना चाहिए। भैया हमने दे दिया, चन्द्र स्वर में दे दिया तो फिर अब कभी लौट कर ही नहीं



आएगा। आप यह ध्यान रखें कि सूर्य स्वर में भी कुछ उपयोगी कार्य इस तरह के किये जाते हैं। कभी-कभी यह विद्या-अध्ययन वगैरह भी हमारे लिए केवल काम चलाऊ हैं। हमेशा के लिए हमें नहीं करना है या कुछ अपनी विद्या को स्थिर नहीं रखना है या कुछ काम के लिए करना है, तो सूर्य स्वर में ही करना होता है। जैसे मान लो बच्चों को कभी-कभी ऐसे पेपर देने पड़ते हैं कि केवल पेपर देने के लिए ही पढ़ना पड़ता है फिर बाद में कोई मतलब नहीं है उसका। तो वह एक तरह का चर काम है, बस मेहनत करनी है तुरन्त, **मेहनत का कार्य है, तो वह सूर्य स्वर में ही करना होगा।**

शान्ति का काम आपको चन्द्र स्वर में करना पड़ेगा। मेहनत करनी है तो सूर्य स्वर में ही करनी पड़ेगी तभी हो पाएगी। तो सूर्य स्वर में भी बहुत सारे काम होते हैं।

भोजन करने के बाद बायीं करवट लेटने के फ़ायदे

भोजन भी सूर्य स्वर में किया जाता है। भोजन करना भी क्या है? यह भी एक तरीके से क्रूर कर्म माना जाता है या चर कर्म काम कह लो, क्रूर न कह करके तो इसको क्या कहेंगे चर। क्योंकि आज किया तो आज ही के काम में आएगा। दो घण्टे काम आएगा, एक घण्टे काम आएगा, बाद में फिर करना है। स्थिरता से तो भोजन कभी हो ही नहीं सकता है। तो यह भोजन करने का काम भी एक तरीके से इसी

सूर्य नाड़ी में अच्छा माना जाता है।

भोजन के बाद विश्राम का तर्क



- भोजन हमें सूर्य स्वर में करना चाहिए जिससे यह अच्छे से पच जाये और शरीर के काम आये।
- इसी कारण भोजन के एक घंटे बाद तक सूर्य नाड़ी चलनी चाहिये। इसी कारण भोजन के पश्चात् दस मिनट बायीं (left) करवट लेटना चाहिए। बायीं करवट लेटने से सूर्य नाड़ी चलने लगती।

दिन में भोजन के समय पर सूर्य स्वर ही चलना चाहिए और भोजन के एक घण्टे बाद तक भी सूर्य स्वर ही चलाना चाहिए। इसलिए कहा जाता है कि भोजन करने के बाद कम से कम दस मिनट के लिए बायीं करवट से लेट जाओ। तो क्या होगा? **बायीं करवट से लेटोगे तो सूर्य स्वर चलेगा**, दायाँ स्वर चलेगा। **दायीं करवट से लेटोगे तो बायाँ स्वर चलेगा**, चन्द्र स्वर चलेगा। स्वर को चलाने के यह तरीके भी हैं। इसलिए आप देखते होंगे कि पहले के लोग भोजन करने के बाद में एक सेठों की तरह बैठा करते थे। अगर आप सेठों की तरह बाईं तरफ देकर बैठें हैं, बाईं तरफ जोर पड़ रहा है, तो अपने आप ही सूर्य नाड़ी चलेगी। पहले के लोगों को ज्ञान रहता था कि ये लोग क्यों ऐसा करते थे, भोजन करने के बाद में नियम से आदत रहती थी कि हमें लेटना है। अगर घर में बड़ों को देखो तो वे भोजन करने के बाद लेटते ज़रूर हैं। बायीं करवट से लेटोगे तो दायाँ स्वर अपने आप



चलेगा। पहले लोग भले ही स्वर ज्ञान न रखते हो लेकिन एक दूसरे की क्रिया-कलापों को अपने घर में इस तरह से सीखा करते थे। कोई भी काम करना होता था तो देख लिया करते थे जैसे- मान लो बड़ों से पैसा माँगना है, पापा से पैसा माँगना है, क्या देखोगे- स्वर दिखे न दिखे, कम से कम यह तो देखोगे कि उनका मूड ठीक है कि नहीं। सामने वाले का मूड अगर ठीक है, तो इसका मतलब क्या है, उसका चित्त प्रसन्न है। अपनी शास्त्र की भाषा में चित्त प्रसन्न है और चित्त प्रसन्न है, तो इसका मतलब चन्द्र नाड़ी चल रही है। उसमें अगर पैसा माँगोगे तो मिलेगा और सामने वाले का सूर्य स्वर चल रहा हो, तुमने पैसा माँगा तो चाँटा पड़ेगा। कहने का मतलब है क्योंकि उसके अन्दर भाव कैसा आएगा? शान्ति का भाव नहीं आएगा वह हमेशा आपके लिए एकदम से क्रूरता का भाव आ जाएगा। जो उसकी अनुकूलता में नहीं है वह चीज सामने आएगी तो एकदम से प्रतिकूलता में बदल जाएगी।

जो यहाँ पर इन स्वरों के माध्यम से बताया जा रहा है, वह पहले इस तरीके से होता था, चला करता था। ऐसे कोई भी विपरीत काम हम करने जा रहे हैं, कोई भी चीजें जो हमने आपको बताई हैं, उन सब विरुद्ध कार्यों में भी इन्हीं सूर्य स्वरों का उपयोग किया जाता है। विरुद्ध कार्य मतलब विपरीत कार्य, उल्टे कार्य, नीच कार्य, निम्न कार्य, व्यसनों के कार्य ये सब सूर्य स्वर में ही किये जाते हैं। जुआ खेलना है,

शराब पीना है, ये सब कार्य इसी सूर्य स्वर में ही हो सकते हैं। कोई भी आदमी अति उत्साह के कार्य करता है, वह सूर्य स्वर में ही समझो। इसके ये प्रभाव हैं, कार्य हैं।

बाएँ स्वर में कार्य करने से मनोवांछित सभी कार्यों की पूर्ति

अभ्युदयहृदयवाञ्छित बाएँ स्वर में होने वाले काम क्या हैं- जिनमें अपने को **अभ्युदय** की प्राप्ति होना, **अभ्युदय मतलब** वैभवों की प्राप्ति होना। धन, सम्पत्ति, घर, परिवार, स्त्री, पुरुष, ये सब वैभव अपने लिए मिलते चले जाएँ और मनोवांछित सब कार्य पूरे हों। ये सब काम किसके हैं? ये शुभ नाड़ी के काम हैं। ये सब बायीं नाड़ी में किये जाते हैं। दिन में कुछ समय आपको यह सूर्य नाड़ी भी, भोजन के समय चलनी चाहिए, यह ध्यान में रखना।

अच्छी नींद लेने के उपाय

सोते समय जब आप शयन करने के लिए जाएँ तो उस समय भी देख करके सोना कि **शयन करते समय पर भी आपका सूर्य स्वर ही चलना चाहिए।** अगर नहीं चले तो भी शयन में भी बाएँ करवट से लेटे, आपका सूर्य स्वर धीरे-धीरे चलने लग जाएगा। ऐसा भी हो सकता है, किसी-किसी को रात में नींद नहीं आती है तब क्या करोगे? जब नींद नहीं आ रही हो तब यह देखो कि आप का कौन सा स्वर चल रहा है? एक तरीका तो यह है कि आप उस समय बिल्कुल सीधे लेट जाओ और सीधे लेट



कर **ओं अर्ह नमः** का दीर्घ नाद करो, लम्बा-लम्बा, लगभग दस से ग्यारह बार।

Checklist: अच्छी नींद



बायीं करवट सोयें (सूर्य स्वर में)

- यदि नींद ना आये सीधे लेटें और ओं अर्ह नमः का ग्यारह बार दीर्घ नाद करें। ओं पेट को अन्दर करके, फिर अर्ह बोल करके और नमः के साथ में पेट को फुलाते हुए
- यदि फिर भी नींद ना आये तो स्वर को बदलने की कोशिश करें; यदि आपका सूर्य चल रहा है तो दायीं करवट लेट जाएँ

ओं अर्ह नमः का दीर्घ नाद करो। इससे क्या होगा? जो आपकी नाड़ी सही ढंग से चलनी होगी वह चलना शुरू हो जाएगी। लेट करके, ओम अर्ह नमः का दीर्घ नाद, ओम पेट को अन्दर करके, फिर अर्ह बोल करके और नमः के साथ में पेट को फुलाते हुए। पास वाले को परेशानी हो तो ऐसी जगह पर सोना जहाँ पर नींद आ जाये। आपको पता तो है ही कि नींद नहीं आ रही है या फिर पास वाले को disturbance हो तो आप जोर से न बोल करके मन में भी बोल सकते हैं। धीमे भी बोल सकते हैं और श्वास पर ध्यान रख कर भी बोल सकते हैं। इससे आपके लिए थोड़ी सी नाड़ी शुद्ध हो करके आपको नींद आने की इसमें सम्भावना है, आपका दिमाग चिन्ताओं में कहीं व्यस्त होगा तो वह ठीक हो जाएगा। हमेशा सोने का प्रयास तो बाएँ करवट से ही करना है, सूर्य स्वर

के साथ ही चलते हुए सोना चाहिए। फिर भी किसी कारणवश अगर आपको उसमें बेचैनी हो रही हो, नींद नहीं आ रही हो तो आप यह तरीका अपनाएँ। अब इसमें भी नींद न आए तो फिर आप जो स्वर चल रहा हो वह स्वर देखे और उसके विपरीत स्वर चला कर फिर सोने की कोशिश करे। अगर मान लो उस समय पर आपको सूर्य स्वर में भी निद्रा नहीं आ रही है, बहुत समय से परेशान हैं तो फिर आप उस सूर्य स्वर की जगह चन्द्र स्वर चला कर सोने की कोशिश करो तो निद्रा आ सकती है। ऐसा करके आप कम से कम निद्रा की गोलियाँ खाने से तो बचे रहोगे। ये तरीके हैं, इनके माध्यम से आप अपने आपको व्यवस्थित बना सकते हो। वही यहाँ कहा जा रहा है कि जितने भी शुभ वांछित काम हैं उनमें तो आप हमेशा दिन में चन्द्र और रात में सूर्य। यह सामान्य नियम है। दिन में भी सूर्य, भोजन इत्यादि के समय पर या कोई विरुद्ध कार्य करना हो। शान्त व्यक्ति के लिए चन्द्र स्वर सबसे उत्तम है। सभी शुभ कामों के लिए, मंगल के लिए और जो कुछ विपरीत बातें थी, वे आपको बता ही दी। सुबह उठते हुए सही नाड़ी चल रही हो, दोपहर में भी कुछ समय के लिए सुषुम्ना चलने के बाद अगर चन्द्र स्वर चल जाए, कुछ समय के लिए और शाम को संध्या के समय पर सूर्य स्वर चले तो समझ लेना आप स्वस्थ है। यह थोड़ी-थोड़ी सी पहचान करने की चीजें हैं, स्वस्थता के लिए और शुभ होने के लिए।



UNIT 4: अर्ह अष्टाङ्ग योग



Chapter 4.1 – अर्ह अष्टाङ्ग योग – परिचय

योग के आठ अंग

योग के आठ अंगों की परम्परा प्राचीन है। योग के आठ अंग वैदिक और श्रमण परम्परा दोनों में ख्यात है। हमें यह भी याद रखना है कि अन्य-अन्य मतावलम्बी योग के अंग और तरह से भी मानते हैं। वैसे तो योग के आठ अंग इस प्रकार कहे हैं।

1. यम
2. नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धारणा
7. ध्यान
8. समाधि

कुछ लोग यम, नियम इन दोनों को छोड़कर शेष छह अंग मानते हैं। कुछ मतावलम्बी छह प्रकार के योग अंग इस तरह मानते हैं -

1. उत्साह
2. निश्चय
3. धैर्य
4. सन्तोष
5. तत्त्वदर्शन
6. जनसंग परित्याग

कोई कहते हैं कि ये यमादिक मन को स्थिर करने के लिये तथा मन की शुद्धता के लिए हैं। इस तरह दुनिया में सभी लोग योग को केवल

मन की स्थिरता और शुद्धता के लिए मानते हैं। प्रचलित उपर्युक्त आठ अंग भी अन्ततः समाधि के लिए हैं।

ध्यान के आठ अंग

जैनाचार्यों ने योग को चित्त की प्रसन्नता और शुद्धि का कारण तो माना ही है साथ में इसे मुक्ति के लिए भी कारण माना है। इससे यह जानना है कि योग के अंग मात्र मन को स्थिर और प्रसन्न करने के लिए नहीं है अपितु मुक्ति के लिए साधन हैं। जैनाचार्यों ने योग को इसीलिए ध्यान कहा है। ध्यान की प्रमुखता से योग के आठ अंग ही ध्यान के अंग हैं।

ध्यान की सिद्धि के लिए इन आठ अंगों को “तत्त्वानुशासन” ग्रन्थ में

1. ध्याता
2. ध्यान
3. ध्येय
4. ध्यान का फल
5. ध्यान का विषय
6. ध्यान का क्षेत्र
7. ध्यान का काल
8. ध्यान की रीति

इन आठ अंगों को स्वीकारा है। “अर्ह अष्टांग योग” में इन्हीं आठ अंगों का विस्तार से वर्णन है। उसी को संक्षिप्त रूप से यहाँ समझते हैं।

1. ध्याता

ध्यान करने वाला प्राणी ध्याता है। किसी भी



पद्धति को सीखने के लिए लौकिक क्षेत्र में भी एक योग्यता निर्धारित की जाती है जैसे कि यदि आपको IAS का Exam देना है तो Graduate होना चाहिए। यदि आपको Doctor बनना है तो Neet का Exam pass करना होगा जिसके लिए न्यूनतम योग्यता 12th Pass की है। ठीक इसी तरह जो भी व्यक्ति ध्यान की सिद्धि चाहता है या ध्यान से मुक्ति चाहता है तो उसकी योग्यता ही ध्याता का लक्षण है। **ध्याता की मुख्य नियामकता तो यह है कि उसकी दृष्टि में आत्मा और परमात्मा का स्वरूप ठीक तरह से विश्वास में हो।** अपने जीवात्मा और उससे भिन्न अजीव को सही तरह से विश्वास में लाने पर ही वह सही ध्याता है। यदि कोई व्यक्ति विश्वास के साथ आगे बढ़ता है तभी वह सफल होता है। विज्ञान या जीवन के हर क्षेत्र में यही बात लागू होती है। इसी तरह ध्यान करने वाले ध्याता के लिए है। हाँ ! यदि वह सही विश्वास अभी नहीं रखता है किन्तु चाहता है कि मुझे सच्ची सही पद्धति का ज्ञान हो जाये तो ऐसा व्यक्ति भी थोड़ा अभ्यास करके तत्वज्ञान पूर्वक विचार करके आगे बढ़े तो समीचीन (सही, सच्चा) ध्याता बन जाता है।

योग्यता रखने वाला तो योग्य है ही किन्तु जो योग्यता नहीं रखता है वह भी यदि सही पद्धति से सीखे तो योग्य बन जाता है। इसलिए ध्याता कोई भी बन सकता है। मार्ग सबके लिए खुला है। पतंजलि के अष्टांग योग में भी यम, नियम आदि की शर्त इसीलिए है कि वह अपने भीतर विचार और आचरण में योग्यता लाए। यम का मतलब है हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील (काम-

वासना), परिग्रह (बाह्य वस्तुओं को संगृहित करने की लालसा) इन प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण करके अपने को यमी बनाना, संयमी बनाना। साथ ही सत्य, सन्तोष आदि पवित्र भावों से अपने मन को भी ध्यान योग्य बनाना। यही योग्यता आत्मा और परमात्मा के विषय में सही जानकारी सही विश्वास के साथ यम, नियम का पालन करें तो ध्यान का कारण बनती है। यही ध्याता का लक्षण है।

2. ध्यान

ध्यान एक क्रिया है। जैसे जाना (To go), जानना (To Know), खाना (To Eat) इत्यादि क्रियाएं हैं जो किसी कर्ता (Subject) के द्वारा की जाती हैं उसी तरह ध्याता की क्रिया ध्यान है। ध्यान (To Meditate) एक क्रिया-प्रक्रिया है। हर एक व्यक्ति का ज्ञान एक साथ अनेक जगह सोचता है, अनेक प्रकार के विचारों में संलग्न रहता है। ज्ञान को एक जगह, एक वस्तु में लगाना, विचार को नियन्त्रित करके अन्य जगह से हटाकर जहाँ ध्याता चाहे वहीं लगे तो वही ज्ञान ध्यान बन जाता है। जैसे खाने-पीने, गाड़ी Drive करने में ध्यान लगता है वैसे ही यदि आत्मा-परमात्मा के लिए ध्यान लगे तो वह ध्यान मुक्ति का कारण बनता है। ध्यान की क्रिया वैसे तो सभी कर रहे होते हैं किन्तु इस संसार और शरीर से मुक्ति के लिए की जाये तो वह ध्यान ही सार्थक है।

संसार में सभी प्राणियों को होने वाले ध्यान, आर्त ध्यान (दुःख का ध्यान) और रौद्र ध्यान (रौद्र, क्रूर कार्यों में लगाना) हैं। जो ध्यान हमें आत्मशुद्धि की ओर ले जाकर स्वयं आत्मा को



परमात्मा बना देते हैं उन ध्यानों के नाम ही धर्म्य ध्यान और शुक्ल ध्यान हैं। इसलिए आर्त, रौद्र ध्यान छोड़कर धर्म्य, शुक्ल ध्यान को जो ध्याता है वह परमात्मा बन जाता है। परमात्मा बनना ही संसार के क्लेशों से मुक्ति है जो ध्यान से ही होती है।

3. ध्येय

ध्यान का subject ध्येय है। जिस object के लिए क्रिया की जाती है कर्ता उसी को प्राप्त करता है। खाने वाला कर्ता प्राणी है। खाना, चर्बन करना एक प्रक्रिया है और क्या खाना यह उस कर्ता का कर्म है। खाने योग्य पदार्थ जैसा होगा वैसा ही उसका विचार और स्वास्थ्य होगा। इसी तरह ध्यान के योग्य पदार्थ (ध्येय) जैसा होगा ध्यान से वैसे ही उपलब्धि होगी। ध्येय मिथ्या (झूठा), गलत होगा तो ध्यान से सही (समीचीन) फल कभी प्राप्त नहीं होगा। ध्येय का महत्व इसीलिए है। ध्येय आत्मा है तो आत्मा मिलेगी, ध्येय शुद्धता है तो शुद्धता मिलेगी, ध्येय गुण (quality) को विकसित करता है तो वह मिलेगा, ध्येय शान्त, शुद्ध परमात्मा है तो वह मिलेगा। ध्येय को सुनिश्चित करना इसीलिए नितान्त आवश्यक है।

4. ध्यान का फल

प्रत्येक क्रिया का फल तो मिलता ही है इसलिए ध्यान क्रिया का फल ही ध्यान का फल है। ध्यान के फल दो प्रकार के हैं।

तात्कालिक फल - ध्यान करने से मन को तुरन्त शान्ति मिलती है। सद्विचार आते हैं। गलत, अन्याय के रास्ते से हटकर मन सही, न्याय-नीति के रास्ते पर लगता है। अपने लिए अच्छा सोचने वाला ही सबके लिए अच्छा सोच

पाएगा। मन की कमजोरी दूर होती है और एक अद्भुत शक्ति से मन का सम्बन्ध होने से अद्भुत ऊर्जा का संचार होता है। मन का प्रभाव जब शरीर पर पड़ता है तो शरीर भी नीरोग होता है। शरीर, इन्द्रियाँ, श्वास अबाधित गति से काम करते हैं। यह ध्यान के तात्कालिक फल हैं जो ध्याता को अनुभूति में आते हैं।

आगामी फल - निरन्तर ध्यान अभ्यास से आगामी विचारपथ सुदृढ़ हो जाता है जिससे इस जन्म में पूरी उम्र तक अच्छा सुखी जीवन जीता है और अगले जन्म में भी। ध्यान से आत्म पर संस्कार पड़ते हैं जिससे मृत्यु उपरान्त भी आत्मा अगले जन्म में सत्कार्यों में संलग्न रहता है और फिर इसी तरह के अभ्यास से शनैः शनैः मुक्ति प्राप्त करता है।

5. ध्यान का विषय

जो कुछ भी संसार में विद्यमान है वह जीव या अजीव पदार्थ है। जीव का रहना चार गतियों में होता है। कुछ में बुरे देह आदि हैं तो कुछ में बहुत सुन्दर हैं। इसी तरह अजीव पदार्थ भी बहुत सुन्दर या बहुत बुरे होते हैं। जो ध्यान करने वाला है वही संसार के किसी भी पदार्थ को ध्यान का विषय बना सकता है। ध्यान का विषय और ध्येय अलग-अलग है। ध्येय में एकाग्रता बहुत समय तक होती है। ध्यान के विषय में भी बहुत समय तक विचार चलता है किन्तु एकाग्रता ध्येय में ही होती है। ध्यान करते हुए या ध्यान के बाद जो कुछ भी योगी सोचता है वह सब ध्यान का विषय है। चूंकि ऐसा ध्याता राग, द्वेष रहित होता है इसीलिए अच्छे विषय में वह मोहित नहीं होता तथा बुरे विषय में वह ग्लानि, घृणा से नहीं भरता है।



ध्याता की परीक्षा ध्यान के विषय से होती है। मान लो आपने देवियों की सुंदरता को ध्यान का विषय बनाया तो उस विषय में वास्तव में आप उस सौंदर्य से व्यथित नहीं होंगे। आप उस पर विचार कर लेंगे फिर उसे नश्वर मानकर ध्यान अपने आत्म तत्त्व पर ले आएं। इस तरह ध्यान का विषय तो कुछ भी हुआ परन्तु ध्येय तो आत्म तत्त्व का ही होना चाहिए।

6. ध्यान का क्षेत्र

जिस स्थान पर ध्यान किया जाता है वह ध्यान का क्षेत्र है। प्रारम्भ में ध्याता का क्षेत्र प्रशस्त होना अनिवार्य है। प्रशस्त क्षेत्र पर परिणाम, विचार बहु शीघ्र अच्छे (Positive) हो जाते हैं। एकान्त स्थान, नदी के किनारे, पर्वत, गुफा आदि पवित्र कहे हैं। घर के बगीचे, बाग, छत आदि एकान्त स्थान पर भी ध्यान बनता है। मन्दिर में भी एकान्त हो तो मन लगता है। वृक्ष के नीचे, आस-पास झरना हो, तालाब हो, हरे फलदार वृक्ष हों वह भी प्रशस्त स्थान है। मच्छर, मकखी, चींटी आदि से रहित स्थान हो। बार-बार हाथ पैर हिलाने की जरूरत न पड़े, ऐसे स्थान पर देह स्थिर होती है। सुरम्य वातावरण में ध्यान करना योग्य है। बहुत तेज हवा या पानी न हो, सम शीतोष्ण वातावरण में ध्यान में मन लगता है। ऐसे स्थान पर बैठें जहाँ अधिक देर बैठने पर कोई आकुलता या चिन्ता न उत्पन्न हो, ऐसे स्थान को प्रशस्त क्षेत्र कहते हैं। अभ्यास होने पर स्थान कोई भी हो सकता है।

7. ध्यान का काल

ध्यान के लिए उचित समय होना चाहिए। सुबह का समय, जब हम सोकर उठते हैं, वह

ब्रह्म मुहूर्त का समय सर्वोत्तम है। उस समय वातावरण में शान्ति रहती है। ध्यान के लिए तीनों संध्या भी उत्तम है। सुबह सूर्योदय के कुछ पहले (24 मिनट) से सूर्योदय के बाद (24 मिनट) अर्थात् 48 मिनट कम से कम ध्यान का काल कहा है। इसी तरह दोपहर 12-1 बजे का समय। सांयकाल 5-6 बजे का समय। ध्यान भोजन के 2 घंटे बाद ध्यान की स्थिति बनती है। भोजन के तुरन्त बाद निद्रा का प्रकोप होता है अतः वह समय टाल कर ध्यान करने बैठें। भोजन सुपाच्य, हल्का हो तो कोई फर्क नहीं पड़ता है, आप किसी भी समय ध्यान कर सकते हैं। निद्रा यदि नियन्त्रण में हो तो रात्रि का समय भी ठीक है। सबसे अच्छी बात जब **आपका मन स्थिर हो जाए, शान्त हो जाए, वही समय आपके लिए श्रेष्ठ है।**

8. ध्यान की रीति

ध्यान करने से पहले आसन आदि को संभालें। ठीक तरह से बैठकर निश्चिन्त हों। श्वासोच्छ्वास सामान्य हो। किसी भी तरह की आगामी योजना या पहले की बातों की चिन्ता में न पड़ें। ध्यान से पहले मन को पवित्र बनाने के लिए मैत्री, क्षमा आदि की भावना करें। मन्त्र जाप से भी मन पवित्र होता है। **आसन की स्थिरता के साथ मन को सावधानी से नियन्त्रित करने पर ध्यान की योग्यता बनती है।** ध्यान से पूर्व शरीर के पाँचों स्थानों (केन्द्रों) को भी ऊर्जावान बनाया जाए तो ध्यान आसानी से होता है। अपने मुख के भाव ध्यान के समय भीतर से शान्त हों। ओंठ, भौंह, नेत्र आदि स्थिर एवं सामान्य हों। इस तरह ध्यान की रीति समझकर ध्यान करने की पात्रता आती है।



Chapter 4.2 - ध्यान के अष्टाङ्ग, ध्याता, ध्यान, फल

ध्यान के आठ अङ्ग

ध्याता, ध्यानं फलं ध्येयं यस्य यत्र यदा यथा ।

अष्टाङ्गं हि प्रबोद्धव्यं ध्यानाभ्याससुकाङ्क्षिणाम्
॥16॥

ध्याता, ध्यान, ध्यान का फल, ध्येय, ध्यान का विषय, ध्यान का स्थान, ध्यान का काल और ध्यान की विधि। इस प्रकार से ध्यान के अभ्यास की आकांक्षा करने वालों को योग के ये आठ अंग जानने चाहिए।

1. **ध्याता** योग का साधक योगी या ध्यान करने वाला।
2. **ध्यान** चित्त की एकाग्रता (योगेनैव भवेद् ध्यानं)।
3. **फल**-कर्मों की निर्जरा व मोक्ष प्राप्ति।
4. **ध्येय**-ध्यान करने योग्य पञ्चपरमेष्ठी या इनके बीजाक्षर मन्त्र ओम् अर्ह आदि।
5. **विषय** शुद्धात्मा
6. **क्षेत्र** पवित्र बाधारहित, एकान्त या योगोपयुक्त स्थान
7. **काल** सामान्यतः ब्रह्ममुहूर्त या अनिश्चित काल
8. **रीति** या विधि-कायोत्सर्ग पूर्वक पर्यकासन या सुखासन

योगाङ्गों में ध्यान का सर्वाधिक महत्त्व है जिसमें चित्त की एकाग्रता एतावत् घनिष्ठ होती है कि जिससे अज्ञानान्धकार की समाप्ति व ज्ञानानन्द की प्राप्ति अवश्यंभावी है। ध्यान का निर्वाचन शतक प्रणेता मुनिवर ने क्रिया व कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण कारकों में किया है क्योंकि योगी की आत्मा स्वयं अपनी आत्मा को, अपनी आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा के लिए अपने आत्महेतु से, अपनी आत्मा में ध्याता होने से निश्चयनय की दृष्टि से ध्यान स्वरूप है।

ध्यान का फल प्रमुखतः मुक्ति है (ध्यानस्य फलमाम्नातं, मुक्ति दुःखाच्च मुख्यतः)। ध्यान ही कर्मक्षय का कारण पापबुद्धि विनाशक, स्वात्म-विज्ञाता, महापुण्य-प्रदायक व पूर्वसंस्कार प्रणाशक है। इतना ही नहीं, सैकड़ों जप, तप, जिनपूजा, दान, स्वाध्याय, षडावश्यक आदि ध्यान के अभाव में अर्थकारक नहीं होते।

विना ध्यानेन कस्यापि, पूर्वसंस्कारनाशनम्।

जायेत न कदापीह तपस्त्यागैः शतैरपि॥45॥

अतएव संयमित होकर चित्ताग्रता योगसाधना के मूल में निहित है।

ध्याता

ध्यान योग के स्वामी

यद्यपि धर्म्यदुसध्यान योग्यध्याता चतुर्विधः।



अप्रमत्तः प्रमत्तश्च सदृष्टिर्देशसंयतः ॥ 17 ॥

यद्यपि प्रायः धर्म का जो सध्यान है , उसके योग्य ध्याता वही है जो धर्मपूर्वक सम्यक ध्यान करने वाला प्रशस्त योगी हो। धर्म के विषय में कहा गया है- सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान व सम्यक् चारित्र को ही धर्मज्ञों ने धर्म कहा है (रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ३)। अतः धर्मज्ञों के अनुसार सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र धर्म हैं। गुणस्थान का अर्थ है - कर्मों के कारण से जीव की श्रद्धा और समता (चारित्र) आदि गुणों की अवस्थाओं।

धर्मरूपी समीचीन ध्यान के योग्य ध्याता चार प्रकार के कहे गए हैं।

1. **प्रथम ध्याता:** सप्तमगुणस्थान में रहने वाला होता है। ये मुनि अहिंसा आदि महाव्रतों का पालन करते हुए, समता धारण करते हुए एकाग्रचित ध्यानावस्था में होते हैं। यद्यपि चतुर्थ, पञ्चम व छठे गुणस्थानों में भी औपचारिक रूप से धर्मध्यान होता है परन्तु मुख्यरूप से अप्रमत्त अवस्था में ही धर्मध्यान होता है।
2. **द्वितीय ध्याता:** प्रमत्तगुणस्थान वाला या छठे गुणस्थान वाला होता है। इस गुणस्थान में भी ध्याता अहिंसा आदि महाव्रतों का पालन करते हुए, समता धारण करते हैं। यह एकाग्र ध्यान की अवस्था नहीं है।
3. **तृतीय ध्याता:** देशसंयत या देशविरत अथवा पञ्चमगुणस्थान वाला होता है। ये अहिंसा आदि अणुव्रतों का पालन करते हैं। इनका श्रद्धान समीचीन होता है।

4. **चतुर्थ ध्याता:** सदृष्टि सम्बकदृष्टि या चतुर्थ गुणस्थान वाला होता है। इनका श्रद्धान समीचीन होता है लेकिन अभी ये व्रत आदि नहीं धारण करते हैं।

गुणस्थान 14 होते हैं जो आत्मा के गुण और विशुद्धि की अपेक्षा घटते या बढ़ते रहते हैं। यहाँ सबसे अधिक विशुद्धि वाले संयमी जीवों को प्रथम ध्याता कहा गया है। आगे संयम और विशुद्धि के घटते क्रमसे ध्याता के लक्षण बताये गए हैं।

ध्याता योगी की योग्यता

अहिंसादिब्रती तुष्टस्,

त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।

गुप्तेन्द्रियमना योगी

ध्यातृत्वेन निगद्यते ॥18 ॥

जो अहिंसादि व्रतों को धारण करता है, संतुष्ट होता है। सभी प्रकार के परिग्रहों का त्यागी होता है। इन्द्रिय और मन को गुप्त रखता है अर्थात् इन्द्रिय और मन के विषय में प्रवृत्ति नहीं करता है वह योगी ध्याता के रूप में कहा गया है।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये यम हैं। ये व्रत रूप होते हैं। जिसके व्रत हैं वह ब्रती है। अहिंसादि (पाँच) व्रत जिसमें रहते हैं वह अहिंसादि व्रत से युक्त योगी है। जिसने सभी परिग्रह छोड़ दिया है, जो संतुष्ट हैं, जिसने पाँच इन्द्रियों व मन का परित्याग कर दिया गया है, अर्थात् इन्द्रिय और मन का संयमी योगी- साधक है।



मोक्षमार्ग का साधक ध्याता

एवंविधश्च यो ध्याता,

मोक्षमार्गस्य साधकः ।

पूर्वसूरिभिरित्येवं

समाख्यातो भूरिशः ॥19॥

इस प्रकार का ध्याता होता है, वह मोक्षमार्ग का साधक होता है। पूर्व आचार्यों ने इस प्रकार मोक्षमार्ग के ध्याता के विषय में बहुत कुछ कहा है। मोक्ष की परिभाषा है- 'बन्ध हेतुओं के अभाव और निर्जरा से सभी कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होना मोक्ष है'। पहले बताये गए अहिंसादि यम रूपी पांच महाव्रतों से ही कर्मों का आभाव होता है। उनका पालन करने वाले ही ध्यान की सिद्धि करने वाले कहे गए हैं, तथा वे ही मोक्ष के साधक हैं।

ध्यान सभी के लिए है

यथा मन्त्रेषु मन्त्रश्च

णमोकारो हितङ्करः ।

जापार्थ दीयते लोके,

सर्वस्मै ध्यातये न किम् ॥22॥

जैसे मंत्रों में णमोकार मंत्र हितकारी है और लोक में सभी के लिए वह जाप करने के लिए दिया जाता है। उस मंत्र को हम ध्यान करने के लिए क्यों न दें?

मन्त्र का अर्थ है जिसके द्वारा आत्मा का आदेश (निजानुभव) जाना जाये वह मन्त्र है। जैसा कि कहा गया है-

यह पञ्चनमस्कार मन्त्र किसी मन्त्र से पराजित नहीं हो सकता, सभी विघ्नों का विनाश करने वाला है। सभी कार्यों में मंगलरूप है तथा सभी मंगलों में पहला मंगल है, शुभ करने वाला है वह हितङ्कर है। जो मन्त्र संसार में जाप करने के लिए सभी जीवों को दिया जाता है, वह महामन्त्र सभी के लिए ध्यान करने योग्य है।

जकार से जन्म का नाश होता है, पकार से पापों का विनाश होता है। इसी कारण 'जप' को जन्म और पापों का नाश करने वाला कहा गया है। अर्थात् णमोकारमन्त्र के जप शब्द में 'ज' शब्द जन्मनाशक है। 'प' शब्द पापों का भेदन करने वाला है। इसलिए 'जप' जन्मों और पापों का नाश करने वाला होता है।

मुनि श्रीके इस वचन की प्रामाणिकता निम्नरूप में भी ज्ञात होती है

- “आत्मा के ध्यानों में वस्तुतः पञ्चपरमेष्ठी ही ध्यान किए जाने योग्य है।” (तत्त्वानुशासन, 119)
- “यह पञ्चनमस्कार मन्त्र जिस योगी के चित्त को पञ्चपरमेष्ठी के गुणों के स्मरण रूपी धाराओं से अभिषिक्त करता है उसकी सभी क्षुद्र उपद्रव रूपी धूलियाँ शान्त हो जाती हैं। (यशस्तिलकचम्पू कल्प 39, श्लोक 249)
- यह पञ्चनमस्कार मन्त्र सभी पापों का विनाश करने वाला है तथा सभी मंगलों में पहला मंगल है। (जिनवाणी, पृ. 71)
- पञ्चपरमेष्ठियों के ध्यान करने पर सभी ध्यान उसमें ध्यातव्य समाविष्ट हो जाते हैं।



किसी के ध्यान की आवश्यकता नहीं रहती है। (तत्त्वानुशासन, 140)

ध्यान

एकाग्रचित्तता ध्यानं

तदपि व्यग्रतान्तकम्।

अज्ञानध्यानविध्वंसि

ज्ञानानन्दप्रतिष्ठितम् ॥34॥

चित्त की एकाग्रता ध्यान है और वह व्यग्रता का अन्त करने वाला भी है। अज्ञानरूपी अंधकार का नाश करने वाला ध्यान है जो ज्ञानानन्द में प्रतिष्ठित करा दे उसका नाम ध्यान है।

ध्यान का लक्षण है 'एकाग्रता से चिन्ता का रुकना ध्यान है'। यहाँ पर एक का अर्थ है प्रधानता से। 'अग्र' का अर्थ है-आलम्बन या मुख। एकाग्र (एक अग्र) जो चित्त है वह है एकाग्रचित्त। यहाँ पर भावार्थ में तत्-प्रत्यय करने पर एकाग्रचित्तता शब्द बनता है। वही ध्यान है यह ध्यान का लक्षण है। वह ध्यान व्यग्रता का अन्त करने वाला है। व्यग्र तो ज्ञान ही है, ध्यान नहीं।

वास्तव में ज्ञान की दशाविशेष ध्यान है वहाँ व्यग्रता नहीं, परन्तु एकाग्रता ही है। इसी कारण ध्यान है अज्ञान रूपी अन्धकार का विनाश करने वाला। चित्त की एकाग्रता ध्यान है जो व्यग्रता रहित है, अज्ञान का विनाशक है तथा ज्ञान का आनन्द देने वाला है।

ध्यान का कार्य

विशुद्धिर्वर्धते येन,

चित्तं ज्योतिर्मयं भवेत्।

**तद् ध्यानं हि समाम्नातं
भवानन्दं न वाञ्छति ॥35॥**

जिससे मन की विशुद्धि बड़े और चित्त ज्योतिर्मय हो जाता है वहीं ध्यान कहा गया है तथा जो संसार के आनन्द की इच्छा नहीं करता वही ध्यान है।

जिस ध्यान से आत्मविशुद्धता वृद्धि को प्राप्त होती है तथा चित्त-मन या अन्तःकरण प्रकाशयुक्त या प्रफुल्लित हो जाता है निश्चय से इस प्रकार से ध्यान कहा गया है। योगी उस भव के आनंद (भवानन्द - संसारिक सुख) की अभिलाषा नहीं करता है। भव, भाव, संसार पर्यायवाची हैं। जैसा कि द्रव्यसंग्रह में कहा गया है- यदि ध्यान करना चाहते हो तो मन को स्थिर रखो तथा प्रिय अप्रिय इन्द्रिय विषयों में माह, राग, द्वेष मत करो। अतः ध्यान में चित्त की विशुद्धता तथा संसार से विरक्ति आवश्यक है।

ध्यान की परिभाषा

चित्तविक्षेपसन्न्यासश्च

चिन्तारोधो विरागता।

स्थिरा या बुद्धिरित्येव

ध्यानेन परिभाष्यते ॥42॥

चित्त के विशेष का त्याग करना, चिन्ता का रोध अर्थात् उसको रोकना, विरागता अथवा जो बुद्धि स्थिर हो जाती है वह ध्यान रूप से परिभाषित की गयी है।

जब चित्त को प्रवृत्ति इधर-उधर विषयों में नहीं जाती तब होता है चित्त के विक्षेप का सन्न्यास।



अर्थात् चित्त की अन्यथा वृत्ति का त्याग। चिन्ता का रोध चिन्तारोध है। चिन्ता अन्तःकरण की प्रवृत्ति है। रोध का अर्थ है अभाव। चिन्ता के रोध में अन्य चिन्ताओं का अभाव रहता है। वीतरागता राग रहितपना है। और चञ्चलरहित या स्पन्दरहित स्थित बुद्धि स्थिर बुद्धि है। अतः ध्यान की अवस्था में यह आवश्यक है चित्त के विक्षेप का त्याग, अन्तःकरण की प्रवृत्ति का रोकना तथा बुद्धि की स्थिरता रहे।

ध्यान का फल

ध्यानेन स्वात्मविज्ञानं

पापबुद्धेर्विनिष्टता।

ध्यानेन च महापुण्यं

श्रुतज्ञानविशिष्टता ॥44॥

ध्यान से स्व आत्मा का विशिष्ट ज्ञान होता है और पाप बुद्धि का नाश होता है। ध्यान से ही महापुण्य होता है और श्रुतज्ञान में विशिष्टता आती है।

‘चित्त के विशेष का नाम ध्यान है’। उस ध्यान के कारण से स्वात्मा (अपनी आत्मा) का विशिष्ट ज्ञान या विवेक ज्ञान होता है। ध्यान से ही पाप की बुद्धि का विनाश और महापुण्य का महाफल होता है। श्रुतज्ञान की विशिष्टता ही श्रुतज्ञानविशिष्टता है जो उत्पन्न होती है। योगीजन ज्ञान रूप मन के द्वारा ध्यान करते हैं। इसलिए स्थिर मन का नाम ध्यान और तात्त्विक (यथार्थ) श्रुतज्ञान का नाम ध्यान है।’

इस प्रकार जात होता है कि ध्यान के लिए विविध फल हैं। ध्यान से ही 1. स्वात्मा का

ज्ञान 2. पाप बुद्धि का विनाश 3. महापुण्य 4. श्रुतज्ञान का वैशिष्ट्य होते हैं।

ध्यान के बिना संस्कार नाश नहीं

विना ध्यानेन कस्यापि

पूर्वसंस्कारनाशनम्।

जायेत न कदापीह

तपस्त्यागैः शतैरपि ॥45॥

बिना ध्यान के किसी को भी पूर्व संस्कार का नाश अर्थात् अभाव प्राप्त नहीं हुआ। भले ही ऐसा जीव इस लोक में सैकड़ों प्रकार के तप और त्याग करे।

इस लोक में किसी काल में भी बिना ध्यान के किसी भी साधक या योगी का पूर्व संस्कारों का नाश नहीं होता है चाहे वो सैकड़ों प्रकार के त्यागपूर्वक तपस्या करें।

इस लोक सम्बन्धी फल व परलोक सम्बन्धी फल का मुख्य कारण ध्यान ही है। अर्थात् लौकिकों और अलौकिकों का सभी फल सदा ध्यान से प्राप्त होता है। ऐसा कोई गुण, ज्ञान, दृष्टि या सुख नहीं है जो ध्यान के प्रकाश में अज्ञान रूपी अंधकार समूह के नाश हो जाने पर प्राप्त नहीं होता है।

ध्यान के तात्कालिक एवं त्रैकालिक फल

फलं तात्कालिकं वा स्यात्

तथा त्रैकालिकं मतम्।

यद् यद् वाञ्छति तत्तद्धि

ध्यानेन लभते नरः ॥46॥



ध्यान का फल तात्कालिक भी होता है और त्रैकालिक भी माना गया है। जो-जो योगी ध्यान से चाहता है, वह ध्यान द्वारा वही प्राप्त कर लेता है।

ध्यान का परिणाम उस समय ही होने वाला है अथवा त्रैकालिक - भूत भविष्यत व वर्तमान से सम्बन्ध रखने वाला भी कहा गया है। जो मनुष्य कुछ भी अभिलाषा करता है वह सभी कुछ निश्चय से ध्यान के माध्यम से प्राप्त कर लेता है। इसका भाव है कि ध्यान से अशुभ कर्मों का नाश होता है। कुछ कर्मों का विनाश ध्यानकाल में हो या उसी समय हो जाता है तथा कुछ कर्मों का नाश- भूतकाल, वर्तमानकाल या भविष्यकाल में हो जाता है। इसलिए योगी जैसा चाहता है उसी प्रकार का फल प्राप्त होता है।

ध्यान से शरीर स्वस्थता

शरीरस्वस्थता चापि

नाडीगतिसुमन्दता।

तात्कालिकफलत्वेन

चित्तशान्तिश्च सम्मताः ॥50॥

शरीर की स्वस्थता, नाड़ी की गति अतिमन्द हो जाना और चित्त की शान्ति होना- ये ध्यान के तात्कालिक (अतिशीघ्र प्राप्त होने वाले) फल माने गये हैं। नाड़ी की मन्द गति दीर्घ जीवन प्रदाता है।

अर्ह योग प्रणेता मुनिवर प्रणम्यसागर ने नाड़ी के विषय में अर्ह ध्यान योग' रचना में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। वहाँ कहा है कि जब जीवन में श्वासोच्छ्वास तीव्र गति से प्रवाहित होता है तब जीवन दीर्घकालीन नहीं रह जाता है। लेकिन जब श्वासोच्छ्वास ठीक गति से मन्द-मन्द खलता है तब जीवन सम्यक प्रकार से रहता है। ध्यान रूपी आनन्दामृत का पान करते समय श्वासवायु को धीमे से अन्दर की ओर ले जाना चाहिए और बहुत धीमे से बाहर की ओर निकालना चाहिए, सभी अंगों को शान्त रखना चाहिए मानो योगी पत्थर की मूर्ति बन गया हो।



Chapter 4.3 – ध्येय, ध्यान का विषय

ध्येय

ध्येय का लक्षण

यमीप्सति भवानत्र
तद्भाव्यं चिन्त्यमेव वा।
शाश्वतं सुस्थिरं शान्तं
ध्येयं मान्यं विचक्षणैः ॥52॥

इस लोक में जो आपको इच्छित है उसी की भावना करें अथवा उसी का चिन्तन करें जो ध्येय शाश्वत हैं, अच्छे प्रकार से निश्चल है और शान्त है, वही ध्येय बुद्धिमान पुरुषों ने ध्येय रूप में माना है। योगी की भावना के अनुसार ध्येय होता है। भावसाधक समीचीन ध्येय करते हैं यह कहा जाता है।

ऐसा कोई गुण, ज्ञान, दृष्टि या सुख नहीं है जो योग के प्रकाश में अन्धकार के नाश होने पर प्राप्त नहीं होता है। इस श्लोक का भाव है कि ध्याता (योगी) ध्येय का विचार करके ही ध्यान करता है। क्योंकि ध्येय ही शान्त, नित्य व सर्वदा अचल होता है।

ध्येय के चार प्रकार

पिण्डस्थं च पदस्थं च
रूपस्थं रूपपारगम्।
चतुर्विधमपि ख्यातं
ध्येयमध्यात्मवेदिभिः ॥54॥

पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत इन चार प्रकार के भेद से ध्येय अध्यात्म के जानकारों ने कहा है।

अध्यात्म के ज्ञाताओं ने ध्येय नामक योग के अंग को चार प्रकार का कहा है। जिनेन्द्रदेव ने ध्यान चार प्रकार का कहा है

1. **पिण्डस्थ:** इसके स्वरूप का वर्णन मुनिवर श्री प्रणम्यसागर जी ने सुन्दर रूप से किया है पिण्डे-अपने शरीर में स्थ-स्थित जो अरिहन्त भगवान उनके स्वरूप का ध्यान पिण्डस्थ ध्यान है। (अर्ह ध्यान योग, पृ.95)
2. **पदस्थ:** इस ध्यान के विषय में शुभचन्द्राचार्य ने कहा है- 'योगीजन पवित्र पदों का आश्रय लेकर जिस ध्यान को किया करते हैं उसे विद्वान् 'पदस्थ' ध्यान कहते हैं अर्थात् मंत्र के पदों में जो ध्यान किया जाता है वह पदस्थ ध्यान है।
3. **रूपस्थ:** मुनि श्री प्रणम्यसागर के अनुसार अर्हत् भगवान के रूप का ध्यान ही रूपस्थ ध्यान है। (अर्ह ध्यान योग, पृ. 105)
4. **रूपवर्जितम्:** रूपपारंग या रूपातीत इस ध्यान के विषय में शुभचन्द्राचार्य ने कहा है- (श्लोकार्थ) जिस ध्यान में शुद्ध (कर्ममल रहित) अमूर्त और ज्ञानमय शरीर संयुक्त ऐसे चेतन व आनन्दस्वरूप आत्मा का स्मरण किया जाता है उसे रूपातीत ध्यान माना गया है। इस ध्यान में योगी आत्मा के द्वारा चिदानन्दमय शुद्ध अमूर्त ज्ञानशरीरी आत्मा को स्मरण करता है।



सरल ध्येय विधि

**मन्त्राक्षरपदध्यानं
शान्तरूपं च कस्यचित् ।
श्वासोच्छ्वासक्रमं पूर्वं
ध्येयत्वेन सुगम्यताम् ॥56॥**

यहाँ ध्येय को लक्ष्य करके उसकी प्रक्रिया का विवेचन किया गया है - पहले श्वासोच्छ्वास का क्रम फिर मन्त्र, अक्षर, पद का ध्यान और किसी के भी शान्तरूप का ध्यान वह ध्येयपने से जानना चाहिए।

वास्तव में ध्याता ध्यान के समय श्वासोच्छ्वास के क्रम को सबसे पहले ज्ञात करता है। निःश्वास और उच्छ्वास या साँसों को लेने और छोड़ने के क्रम को श्वासोच्छ्वास कहते हैं। जैसा कि कहा गया है - 'अत्यन्त तीव्र प्राणापान होने से अर्थात् बहुत देर तक श्वासोच्छ्वास को रोककर रखने से ध्याता इन्द्रियों का पूर्णरूप से वश में न करने के कारण मन से व्याकुल हो जाता है। व्याकुल मन वाले का चित्त एकाग्र नहीं रहता है। अतः ध्यान भंग हो जाता है। समाधि में लीन ध्याता को ध्यान की सिद्धि के लिए मन्द-मन्द श्वासोच्छ्वास लेना चाहिए। इसी कारण ध्याता श्वासोच्छ्वास के क्रम को सम्यक प्रकार से ज्ञात करने वाला आत्मध्यान करता है।

अतः मुनि श्री कहते हैं- मन्त्र का अक्षरों व पदों का ध्यान ही मन्त्राक्षरपदध्यान है। मन्त्र पञ्चनमस्काररूप में है। जैसा कि कहा गया है- 'पञ्चपरमेष्ठियों में नमस्कार करने योग्य लक्षण वाला तथा संसार के प्राणियों को पवित्र करने में समर्थ तेजस्वी णमोकार मंत्र का ध्यान करना चाहिए।- अतः 'णमोकारमन्त्र' या 'अर्ह' मन्त्र का ध्यान करना चाहिए। णमोकारमहामन्त्र में

पाँच पद हैं- 1. अरिहन्तार्ण, 2. सिद्धाणं 3. आयरियाणं 4. उवज्झायाणं 5 साहूणं इनका ही ध्यान करना चाहिए।

अक्षरात्मक मन्त्र के विषय में कहा गया है 'एक अक्षर को आदि लेकर अनेक प्रकार के परमेष्ठी वाचक पवित्र मन्त्र पदों का उच्चारण करके ध्यान किया जाता है।' जैसे एकाक्षर मन्त्र है- **ओम्** दो अक्षरों का मन्त्र है- **अर्ह**। पाँच अक्षरों का मन्त्र है- **अ सि आ उ सा** इस प्रकार अनेक मन्त्र विविध अक्षरात्मक जानने चाहिए। पुनः किसी महात्मा के या परमेष्ठी के शान्तरूप का ध्यान करना चाहिए।

इसका भाव है कि योगी के ध्येय के विषय में सर्वप्रथम श्वासोच्छ्वास के क्रम को पुनः मन्त्र के अक्षर व पद के ध्यान को तत्पश्चात् किसी शान्तरूप का ध्यान करना चाहिए।

अक्षरात्मक मन्त्र

एक अक्षर	➤	ओम्
दो अक्षर	➤	अर्ह
पाँच अक्षर	➤	अ सि आ उ सा



अक्षर ध्येय का फल

**ओं अर्हमिति मन्त्रैश्च
ध्यायति सति धीधनः ।
मन्त्रशक्तिविशुद्धिभ्या-
-मक्षरं लभतेऽक्षरैः ॥57॥**



ओं अहं इस शाश्वत मन्त्र के द्वारा ध्यान करने पर बुद्धिमान पुरुष मन्त्र की विशुद्धि से और मन्त्र की शक्ति के द्वारा ही 'अक्षर' अर्थात् अविनाशी पद को प्राप्त कर लेता है। जो नष्ट न होता हो वह अक्षर है।

'ओम्'- यह पञ्चपरमेष्ठियों के आदि पद-स्वरूप है। अरिहंत का आदि अक्षर 'अ' है। सिद्ध अर्थात् अशरीरों का प्रथम अक्षर 'अ' है। आचार्य का प्रथम अक्षर आ है। उपाध्याय का प्रथम अक्षर उ है साधु या मुनि का प्रथम अक्षर 'म्' है। इस प्रकार (अ अ आ उ म) ये पाँच परमेष्ठियों के पाँच अक्षर हैं। जो गाथा में कहे गये हैं। इनमें 'समानः सवर्ण दीपो भवति' (समान सवर्ण दीर्घ हो जाता है) के अनुसार अअ आ हो जाता है। तत्पश्चात् 'परश्च लोपम्' (बाद के समान वर्ण का लोप हो जाता है) अतः आ का लोप होने पर आ शेष रहता है। शेष आउ-मू में 'उ वर्ण ओ सूत्र से अउ ओ हो जाता है। अतः औ-म्-ओम् यह परमेष्ठी बाचक बोजाक्षर होता है।

'अहं' मन्त्र के विषय में जिनसेनाचार्य ने कहा है- 'अहं' इस मन्त्र में आदि में 'अ' है। अन्त में 'ह' है। मध्य में रेफ है और अन्त में विन्दु है। इस प्रकार के अहं इस उत्कृष्ट बीजाक्षर का ध्यान करके माक्षाभिलाषी मुनि कभी दुःखी नहीं होता।'

इस श्लोक का भाव है कि 'ओम्' 'अहं' इस प्रकार के मन्त्रों के ध्यान करने पर योगी या साधक मन्त्रशक्ति के प्रभाव से और आत्मविशुद्धि होने से परम पद को प्राप्त करने योग्य होता है।

आत्मा ही ध्येय

एष आत्मा तु कस्यापि,

देहे तिष्ठतु किं मया।

हरिब्रह्मा जिनो बुद्धो,

विष्णुर्वा तस्य संज्ञितः ॥60॥

ऐसी आत्मा किसी भी देह में रहे मुझे इससे क्या उसका नाम हरि हो, ब्रह्मा हो, जिन हो, बुद्ध अथवा विष्णु हो, वह हमारे लिए ध्येय है।

जब ध्याता मन, वचन काय से शान्त होता है यह भी ध्येय की स्थिति जाननी चाहिए यह कहा जाता है। जो ध्येय है, वह विशुद्धात्मा किसी भी प्रकार के शरीर में होवे या रहे उससे कोई भी प्रयोजन नहीं है। क्योंकि शरीर पूज्य नहीं है तथा न शरीर ध्येय का विषय है। जो पाप को हरता है वह हरि है। जो वृद्धि करता है वह ब्रह्मा है। ऋषभदेव (आदि तीर्थंकर) भी ब्रह्मा कहे जाते हैं। मोह आदि शत्रुओं को जीतता है वह जिन है। तीनों लोकों के समस्त पदार्थों को जानने से वह बुद्ध है। ज्ञानरूप में लोक और अलोक को जो वेष्टित करते हैं, वे विष्णु हैं। विशुद्धात्मा किसी भी प्रकार के शरीर में होवे, उसका कोई भी नाम होवे यह चिन्ता का विषय नहीं है, क्योंकि ध्येय तो आत्मा ही है।

चतुर्विध भावना ध्येय

सर्वजीवेषु मे मैत्री

गुणवत्सु प्रमोदता।

कारुण्यं दुःखिजीवेषु

विपरीतेषु साम्यता ॥70॥



सर्व जीवों में मेरा मैत्री भाव है, गुणवानों में प्रमोद भाव है, दुःखी जीवों में करुणा भाव है और विपरीत जीवों में साम्य भाव है।

इस श्लोक में भावध्येय की चार भावनाएँ निर्देशित की गयी हैं।

- 1. मैत्री:** मुनि श्री ने मैत्री भावना के विषय में यहाँ कहा है सभी जीवों में, समस्त प्राणियों में, मेरा सौहार्द पूर्णता, दूसरों को दुःख न देने की अभिलाषा अथवा मित्रता का भाव है।
- 2. प्रमोद:** गुणीजनों में प्रसन्नता का भाव है। जैसा कि शुभचन्द्राचार्य ने कहा है- जिनकी आत्मा लोकों को आश्चर्यान्वित करने वाले चारित्र्य से अधिष्ठित है उन महान् पुरुषों के गुणों में जो हर्ष होता है वह सत्पुरुषों के द्वारा मुदिता (प्रमोदता) भावना मानी गयी है।
- 3. कारुण्य:** व्याकुल प्राणियों में करुणा का भाव या कर्म कारुण्य है। दीनों पर अनुग्रह (दया) का भाव कारुण्य है। जैसा कि शुभचन्द्राचार्य ने कहा है- (श्लोकार्थ) 'मरण की वेदना से व्यथित प्राणियों के विषय में उनकी पीड़ा के प्रतिकार की इच्छा से जो अनुग्रह रूप दया भाव की वृद्धि होती है वह करुणा कही जाती है।
- 4. साम्यता या माध्यस्थ्य:** राग-द्वेषपूर्वक पक्षपात का अभाव माध्यस्थ्य या साम्यता है। शुभचन्द्राचार्य के अनुसार देव शास्त्र व मुनिसंघ की निन्दा करने

वाले अपनी प्रशंसा करने वाले तथा नास्तिक (आत्मा व परलोक को न मानने वाले हैं उनके विषय में क्षोभ को प्राप्त न होकर जो समता भाव रखा जाता है वह माध्यस्थ्य या उपेक्षा भावना कही जाती है।

ये चार भावनाएँ भाव ध्येय में ध्याता द्वारा ध्यान की जानी चाहिए। इनकी प्रामाणिकता 'तत्त्वार्थसूत्र' से ज्ञात होती है- 'प्राणिमात्र में मैत्री, गुणीजनों में प्रमोद, दुःखी जीवों में करुणा तथा विरुद्धचित्त वालों में माध्यस्थ्य (समता) भाव रखना चाहिए।' उपर्युक्त कथन की प्रामाणिकता 'ज्ञानार्णव' में भी देखी जाती है। जैसे- (श्लोकार्थ)- 'जिन चार भावनाओं का प्राचीन ऋषियों ने आश्रय लिया है। धर्म की सिद्धि के लिए उन मैत्री आदि भावनाओं का चिरकाल तक चित्त में चिन्तन करना चाहिए।'

जीव पदार्थ ध्येय

जीवो नाम पदार्थोऽहमजीवादेहतः पृथक् ।

अनन्तगुणवानस्मि देहे जीवगुणा न मे ॥71॥

मैं जीव नाम का पदार्थ हूँ। अजीव देह से पृथक् हूँ। अनन्त गुणवान हूँ। मेरी देह में जीव के गुण नहीं हैं। ऐसा चिन्तन करना चाहिए।

मैं आत्मा या ध्याता जीव नामक एक जीव या पदार्थ हूँ। मैं अजीव से, पुद्गलों से या चेतना से रहित शरीर से भिन्न हूँ। अनन्त गुणों से युक्त विद्यमान हूँ। मेरे शरीर में जीव के गुण नहीं हैं- चेतनता नहीं है। जिसके चेतना है वह जीव है।

शरीर अन्य है, मैं अन्य हूँ क्योंकि मैं चेतन हूँ और शरीर अचेतन है। यह शरीर अनेक है और



मैं एक रूप हूँ, यह शरीर नाशवान है और मैं अविनाशी हूँ।

इष्टोपदेश में भी कहा गया है- मैं एक हूँ, मैं निर्मम हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञानी हूँ, योगियों के ज्ञान का विषय हूँ। इसके अतिरिक्त जितने भी शरीर आदि सयोगी भाव हैं वे सब मुझसे भिन्न हैं।

इस श्लोक में ध्याता वैराग्यभावना को धारण करके अपनी आत्मा को शरीर से पृथक् रूप में विचार करता है।

आनन्द केन्द्र पर ध्यान

शक्तिकेन्द्रे विचिन्तयैव-

-मानन्दस्थानमर्पितम्।

आनन्दसौख्यसंभूतिः

स्वात्मदेशेषु भाव्यताम् ॥74 ॥

शक्ति केन्द्र पर इस प्रकार से चिन्तन करके, आनन्द स्थान पर मन अर्पित कर सभी आत्मप्रदेशों में अनन्त सुख का वैभव है ऐसी भावना करनी चाहिए।

योगियों के द्वारा सच्चिदानन्द रूप आत्मा ही भावना करने योग्य है। सच्चिदानन्दरूप शक्ति के मध्य में आनन्ददायक स्थान पर (हृदय स्थान पर) मन को समर्पित करके इस प्रकार भावना करनी चाहिए कि अपनी आत्मा के प्रदेशों में आनन्द के सुख-वैभव हैं। वास्तव में आत्मा सच्चिदानन्द रूप है वह परम शक्ति, सुख और आनन्द का केन्द्र है। जब योगी आत्मा में रमण करता है तब वह परम सुख को प्राप्त करता है। जैसा कि शुभचन्द्राचार्य ने कहा है- योगियों का आध्यात्मिक सुख इन्द्रियों की अपेक्षा से रहित, स्वसंवेदन का विषय अविनश्वर आत्मा मात्र की

अपेक्षा रखने वाला (निरपेक्ष), सब प्रकार की बाधा से रहित और अनन्त है।” इन्द्रिय समूह की अपेक्षा न करके योगीजन स्वयं आत्मा में आत्मा के द्वारा जिस सुख का अनुभव करते हैं वह आध्यात्मिक सुख माना गया है।

कण्ठ स्थान एवं ज्ञान केन्द्र पर ध्येय

ततः कण्ठप्रदेशे हि

भवतु शुद्धिमात्मकीम्।

ज्ञानकेन्द्रे भ्रुवोर्मध्ये

चिन्त्यमनन्तबोधनम् ॥75 ॥

उसके पश्चात् कण्ठ प्रदेश में आत्मा की विशुद्धि का अनुभव करना चाहिए। ज्ञान केन्द्र पर दोनों भ्रुकुटि के मध्य में अनन्त ज्ञान का चिन्तन करना चाहिए।

इस कथन की प्रामाणिकता सोमदेवाचार्य के वचन है ‘चित्त को दोनों भौहों के बीच में स्थापित करके दिव्यज्ञान प्राप्त करें।’ यहाँ पर शुभचन्द्राचार्य के वचन भी प्रामाणिक हैं - शरीर में ये सभी ध्यान लगाने के स्थान हैं इनमें से किसी एक स्थान पर मन को स्थिर करके ध्यान करना चाहिए। इस श्लोक का भाव है कि कण्ठप्रदेश में दोनों भ्रू के बीच में या अन्य स्थान पर चित्त को लगाकर साधक के द्वारा आत्मचिन्तन करना चाहिए। शरीर के अंग तो साधन है साध्य तो आत्मा ही है।

अहं बीजाक्षर पद

अकारादिहकारान्त रेफमध्यान्तबिन्दु

कम्ध्यायन् परमिदं बीजं मुक्त्यर्थी

नावसीदति ॥ 77 ॥



‘अ’ कार से लेकर ‘ह’ पर्यन्त जिसके मध्य में रेफ है और अन्त में बिन्दु है ऐसे इस परम बीज को मुक्ति की इच्छा करने वाला ध्यान करता हुआ कभी खेद को प्राप्त नहीं होता है। अर्हं पद बीजाक्षर है जो मोक्षसाधकों के लिए पूर्णतः ध्येययोग्य है।

रामसेनाचार्य द्वारा ‘अर्हं’ यह मन्त्र अर्हत् परमेष्ठी का वाचक कहा गया है- अपने आदि, मध्य और अन्त में (प्रयुक्त ‘अर्हं’ अक्षरों द्वारा) जो वर्णमाला में व्याप्त होकर विद्यमान है वह अर्हन्तो का वाचक अर्हं पद है जो कि हृदय में ऊँची उठती हुई ज्योति के रूप में नामध्येय है।

अन्यत्र इस मन्त्र को सिद्धचक्र का बीज तथा अर्हत्परमेष्ठी का वाचक कहा गया है। ‘अर्हं’ यह ब्रह्माक्षर परमेष्ठी का वाचक है। यह सिद्धचक्र का सद्बीज है जिसे मैं नमन करता हूँ।

श्रीकुमार कवि द्वारा निवेदित है कि ‘अर्हं’ परम ब्रह्म के ध्यान की ध्वनित करता है तथा सिद्धपरमेष्ठी के ध्यान की अनुभूति करता है। ‘अर्हं’ इसमें ‘अ’ और ‘ह’ अक्षरों के मध्य में वर्णमाला के शेष सभी अक्षर रहते हैं। इसी कारण मुनियो ने इसे अनघ शब्द ब्रह्मात्मक कहा है। यह उज्ज्वल बिन्दु को धारण किए हुए अमृत कला अर्धचन्द्र से युक्त और रेफ से व्याप्त सकिरण ज्योतिपद परम ब्रह्म के ध्यान को ध्वनित करता है, यह आत्मानुभूति कराता है। इस श्लोक से ज्ञात होता है कि अर्हं- यह बीजाक्षर पद मोक्षसाधकों के लिए ध्यान करने योग्य है।

ध्यान का विषय

ध्यान योग्य समस्त जगत्

उदासीनस्य सध्यातुः

सर्वमालम्बनं जगत्।

एकाग्र्येण नहि स्थैर्यं

यावत् तावच्च भावना ॥८१॥

समीचीन ध्यान करने वाले उदासीन ध्याता के लिए सारा जगत् ही ध्यान के लिए आलम्बन स्वरूप है। एकाग्रता के साथ में वह ध्यान है। जब तक स्थिरता नहीं होती तब तक वह भावना कहलाती है। ध्यान के समय विरक्त योगी का आलम्बन कोई भी पदार्थ हो, परन्तु उसके चित्त की एकाग्रता परम आवश्यक है।

विरक्त श्रेष्ठ साधक को समग्र संसार ही ध्यान का आधार है। जैसा कि ‘महापुराण’ में कहा गया है- संसार के समस्त तत्त्व जो जिस रूप में अवस्थित है ध्यान के आलम्बन हैं। जिनमें आत्मा और आत्मीयता का संकल्प न होने से जो उदासीन रूप से विद्यमान हैं वे सब ध्यान के आलम्बन हैं। जब तक या जिस समय पर्यन्त एकाग्रता से स्थिरता नहीं होती उस समय पर्यन्त भावना ही रहती है, ध्यान नहीं रहता है। भावना का लक्षण है - ज्ञात अर्थ का बार-बार चिन्तन करना भावना है। वास्तव में ध्यान के समय योगी की चित्त की एकाग्रता आवश्यक है। जैसे वायुरहित स्थान में स्थित दीपक प्रकम्पित नहीं होता उसी प्रकार अपने स्वरूप में (आत्मा में) स्थित योगी एकाग्रता नहीं छोड़ता।

इसका भाव है कि योगी के ध्यान का आलम्बन इतना आवश्यक नहीं है जितनी एकाग्रता है। यदि एकाग्रता में स्थिरता नहीं रहती है तो वहाँ



भावना ही है, सध्यान नहीं रहता है।

कैसा द्रव्य चिन्तन करें

नित्यानित्यादिधर्मैश्च

प्रतिद्रव्यं विचिन्त्यताम्।

प्राप्तव्यमात्मतत्त्वं हि

ध्येयद्रव्यं सुभाषितम् ॥85॥

नित्य अनित्य आदि धर्मों के साथ प्रत्येक द्रव्य का चिन्तन करना चाहिए किन्तु उसमें आत्म तत्त्व ही प्राप्त करने योग्य है। वह ही ध्येय योग्य तत्त्व कहा गया है।

द्रव्य अनादिनिधन है अर्थात् न कभी उत्पन्न

हुआ है, न कभी नाश होगा। उसमें पर्याय सदा अनित्य रहती हैं। द्रव्यों में स्वपर्याय जल की तरंगों की तरह कभी ऊपर उठती हैं तो कभी नाँचे बैठती हैं। इस प्रकार द्रव्य नाम की वस्तु जो प्रतिक्षण स्थिति उत्पत्ति तथा व्यय रूप है तथा अनादि व अन्त रहित है-यही सब वास्तव में ध्येय का विषय है।

अर्थात् द्रव्य सत् है परन्तु स्थिति उत्पत्ति व व्यय रूप से नित्य और अनित्य है। ध्येयद्रव्य के अनुसार आत्मतत्त्व ही प्राप्त करने योग्य होता है। जैसा कि कहा गया है -जब कोई भी वस्तु ज्ञाता के बिना ध्येयता को प्राप्त नहीं होती तब ज्ञानस्वरूप आत्मा ही सर्वाधिक ध्येय है। अर्थात् आत्मतत्त्व ही ध्येय है।

चिदानन्द चिद्रूप

**चिदानन्द चिद्रूप हूँ, चिन्मय ज्ञायक रूप ।
किया, करूँगा, कर रहा, मन का तृष्णा कूप ॥**



Chapter 4.4 - ध्यान का क्षेत्र, काल, रीति

ध्यान के योग्य क्षेत्र

शून्ये शुचिप्रदेशे वा
विजने चित्तहारिणि।
नात्युष्णे नातिशैत्येऽपि
नातिवायुप्रवाहिते ॥86॥

शून्य स्थान पर, पवित्र स्थान पर अथवा निर्जन स्थान पर चित्त को हरण करने वाले (मनोहर) स्थान पर, जो न बहुत गर्म हो, जो न अधिक शीतल हो, जहाँ बहुत तेज वायु न चलती हो (ऐसा स्थान ध्यान के लिए प्रशस्त या मान्य है।)

क्षेत्र विशेषता

पिपीलिकादिजीवैश्च-
-नुपद्रवे च गह्वरे।
शिलोपरि न वैषम्ये
काष्ठफलक भूमिके ॥87॥

चींटी आदि जीवों के उपद्रव से रहित स्थान पर गुफा में शिला के ऊपर जो ऊँची-नीची न हो, लकड़ी के तख्ते वाली भूमि पर (ध्यान का क्षेत्र प्रशस्त है।)

ऋतु के साथ क्षेत्र विशेष

मेघवर्षादिबाधाभी-रहिते बिन्दुवर्षणे।
वने पितृवने चापि, नदीतटगते गिरौ ॥88॥
मेघों की वर्षा आदि की बाधाओं से रहित स्थान

पर बूंदों की वर्षा से रहित स्थान पर, वन प्रदेश में श्मशान में भी तथा नदी के किनारे वाले प्रदेश में और पर्वत पर (ध्यान का प्रशस्त क्षेत्र मान्य है।)

बाधा रहित स्थान

दुर्गे उच्चैश्च सुस्थाने, चोद्याने वीतबाधके।
दंशमशककीटैश्च न्यूने स्त्रीपशुवर्जिते ॥89॥

महल पर, ऊँचाई पर, सुन्दर स्थान पर बगीचे में बाधा रहित स्थान पर डाँस (वन मक्खी) मच्छर, कीटाणु आदि से रहित स्थान पर नारी व पशुओं से रहित (क्षेत्र ध्यान के लिए प्रशस्त माना जाता है।)

प्रारंभिक योगी के लिए ही क्षेत्र नियम

क्षेत्रं मान्यं प्रशस्तं हि
प्रारब्धध्यानयोगिनाम्।
प्रदेशनियमो नास्ति

निष्पन्नध्यानयोगिनाम् ॥90॥

उपर्युक्त विविध ध्यानस्थान पहली बार ध्यान में संलग्न योगी के लिए कहे गये हैं। सम्पन्न ध्यान योगियों के लिए ध्यान के क्षेत्र का कोई नियम नहीं है।

ध्यानयोग्य क्षेत्र की प्रामाणिकता 'आदिपुराण' में भी दृष्टिगोचर होती है - अध्यात्मस्वरूप को जानने वाले मुनि (योगी) इन स्थानों पर ध्यान करें- शून्य स्थान पर श्मशान में जीर्ण वन में



नदी किनारे पर्वत के तट पर, गुफा में, वृक्ष की कोटर में, अथवा किसी भी पवित्र या मनोहर प्रदेश में जहाँ आतप न हो, अधिक गर्मी न हो, अधिक सर्दी न हो, तेज वायु न चलती हो, वर्षा की बाधा न हो, सूक्ष्म जीवों का उपद्रव न हो, जल प्रपात न हो, मन्द-मन्द वायु बह रही हो। अपने अभ्यास के अनुसार निराकुल होकर आगम के अनुसार जीव-अजीव आदि द्रव्यों के यथार्थ स्वरूप का चिन्तन करे।

शुभचन्द्राचार्य के अनुसार - संयम का साधक योगी संसार परिभ्रमण के दुःखों को शान्त करने के लिए; समुद्र के समीप में वन के अन्त में, पर्वत शिखरों के मध्य में नदी के किनारे, कमलवन के अन्त में प्राकार (कोट) में, शाल वृक्षों के समूह में नदियों के संगम पर, जल के मध्य द्वीप में, प्रशस्त वृक्ष के कोटर में पुराने बगीचे में श्मशान में, पर्वत शिखर पर या गुफा में, जन्तु रहित स्थान पर, मन को प्रसन्न करने वाले स्थान पर प्रशस्त भय व कोलाहल रहित सभी ऋतुओं में सुखदायक, रमणीक, सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित, शून्यघर, पृथ्वी के नीचे या ऊँचे प्रदेश अथवा भूगर्भ में, कदलीघर (केलों के कुंजों) में, लतागृह में, चैत्यवृक्ष के नीचे, वर्षा, धूप, शीत व वायु के संचार, मूसलाधार वर्षा से रहित स्थान पर निरन्तर जागता है तथा बाधाओं से रहित होकर ध्यान करता है।

ध्यान का काल

**ध्यानार्थं मन्यते कालो
योग्यो ब्रह्ममुहूर्तकः ।
अन्योऽपि सम्मतः श्रेष्ठो,
यदा मनसि काङ्क्षणम् ॥११॥**

ध्यान के लिए ब्रह्ममुहूर्त का काल योग्य माना गया है। अन्य काल भी श्रेष्ठ माने गए हैं अर्थात् जब-जब मन में ध्यान की आकांक्षा उत्पन्न हो वही काल श्रेष्ठ है।

तत्त्वार्थसूत्र में ध्यान का समय अन्तर्मुहूर्त कहा गया है- 'ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्। 'तत्त्वानुशासन' में भी अन्तर्मुहूर्तकाल ध्यान के लिए बताया है। ध्यानमन्तर्मुहूर्ततः' (ध्यान अन्तर्मुहूर्तकाल तक होता है।)

ध्यान के लिए दिन हो या रात का समय हो, इसका कोई निश्चित काल नहीं है जिस समय में भी योगी का उत्तम समाधान बन सके वही काल ध्यान के लिए उत्तम है।' -(ध्यानशतक 38)

ध्यान कब करें

यदा निश्चिन्तता चित्ते,

यदा देहस्य लाघवम् ।

अन्यव्यापारचिन्ताया,

विक्षेपरहितं मनः ॥१२॥

जब चित्त में निश्चिन्तता हो अर्थात् चिन्ता का अभाव हो, जब देह का हल्कापन हो, जब मन अन्य व्यापार (कार्यों) की चिन्ताओं के विक्षेप से रहित हो (तभी ध्यान करना चाहिए)।

सद्ध्यान के योग्य निम्नलिखित कोई भी स्थिति उपयुक्त होती है - जिस समय मन में निश्चिन्तता होवे, जिस समय में शरीर का लघुता का भाव हो, जिस समय चित्त अन्य व्यापार की चिन्ता के विक्षेप से रहित हो। ध्यान में शरीर की अवस्था ध्यान के विरोधिनी न होने पर मुनि को



ध्यान करना चाहिए।

इस श्लोक का भाव है कि जब मन में कोई भी चिन्ता न हो, शरीर में कोई बाधा न हो, कोई कार्य शेष न हो तभी निर्विकल्प शान्त योगी ध्यान करे।

ध्यान के लिए प्रयत्न कब?

यदा ध्यानरुचिर्जाता,

वाञ्छा निजानुभावनी।

तदैव यतनीयं हि

ध्यानार्थं मुक्तिकामिना ॥93॥

जब ध्यान की रुचि उत्पन्न हो, जब निज का अनुभव करने की इच्छा उत्पन्न हो, तभी मुक्ति की इच्छा करने वालों को ध्यान के लिए प्रयत्न कर लेना चाहिए।

जो यहाँ यह कहते हैं कि ध्याता पुरुषों के लिए यह काल ध्यान का नहीं है वे स्वयं अपनी अर्हत् मत की अनभिज्ञता व्यक्त करते हैं। मोक्ष के चाहने वाले योगी को ध्यान के अभ्यास में सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

ध्यान रीति

देशकालादिकं भाव्यं,

योग्यं चापि सुखासनम्।

समरूपे स्थितकायस्य,

योगिनो ध्यानसम्भवः ॥94॥

देश, काल आदि की भावना करके योग्य सुखासन आदि को भी करके काय की स्थिति को समरूप बना करके योगी के लिए ध्यान

सम्भव होता है। योग के आरम्भ में जब योगी ध्यान करता है तब ये उसके कर्तव्य होते हैं।

द्रव्य, क्षेत्र (देश) आदि सामग्री ध्यान की उत्पत्ति में कारण है। सुखपूर्वक जो आसन होता है वही सुखासन है। जिस जिस आसन से सुख से ध्यान में बैठा जाए और मन निश्चल हो वही सुखासन है मुनिजनों (योगियों) को उस आसन को ग्रहण करना चाहिए। जिसका काय स्थित है वह स्थितकाय है। उसके स्थिर शरीर के समान दशा में साधु को यथा सुखपूर्वक (सुखासन में बैठकर पल्यङ्कासन धारण करके) शरीर को सम और निश्चल रखना चाहिए तभी प्रशस्त ध्यान करना चाहिए।

ध्यान के लिए आसन

कायोत्सर्गश्च पर्यङ्कः

सुखासनयुगं मतम्।

योगिमुद्रां विधायापि

जिनमुद्रां च शान्तिकीम् ॥95॥

कायोत्सर्ग और पर्यङ्कासन ये दोनों सुखासन माने गए हैं। योगी मुद्रा को करके भी या शान्तरूप जिनमुद्रा को करके भी ध्यान किया जाता है। योग की विधि सुखासन पूर्वक करनी चाहिए तभी शान्तिपूर्वक ध्यान सम्भावनीय है।

शरीर से ममत्व का त्याग कायोत्सर्ग है अथवा सीमित काल तक शरीर में ममता की निवृत्ति कायोत्सर्ग है। सुखासन के विषय में कहा गया है - जंघा का दूसरी जंघा के मध्यभाग से मिल जाने पर पद्मासन हुआ करता है इस आसन में बहुत सुख मिलता है और समस्त लोक में



बड़ी सुगमता से धारण कर सकते हैं (अतः यह सुखासन है।) दोनों जघाओं को आपस में मिलाकर ऊपर-नीचे रखने से पर्यङ्कासन होता है।

कायोत्सर्ग तथा पर्यङ्कासन दोनों सुखासन हैं। सुखपूर्वक जो आसन होता है उसे सुखासन कहते हैं। सुखासन का युग सुखासनयुग अर्थात् दोनों सुखासन हैं। सुखासन के विषय में 'ज्ञानार्णव' में कहा गया है- जिस-जिस आसन से सुखपूर्वक स्थित होकर मन को स्थिर किया जा सकता है, मुनिजनों (योगियों) के लिए उसी रमणीय आसन को ग्रहण करना चाहिए।

तथा दोनों आसनों को प्रशस्त कहा गया है - आकुलता उत्पन्न होने पर कुछ भी ध्यान नहीं किया जा सकता। अतः ध्यान के समय सुखासन लगाना ही अच्छा है। कायोत्सर्ग तथा पर्यङ्कासन ये दोनों सुखासन हैं, इनके अतिरिक्त सभी दुःख देने वाले आसन हैं। योगियों को साधक की स्थिति करके शान्ति देने वाली जिनेन्द्र मुद्रा को करके ध्यान करना चाहिए।

ध्यान के लिए उचित रीति

श्वासोच्छ्वाससमं कृत्वा

मनः संयम्य धीरधीः ।

प्रसन्नमुखचित्ताभ्यां

मैत्र्यादिभावनां भजेत् ॥97॥

श्वासोच्छ्वास को सम करके बुद्धिमान धीर बुद्धि वाला पुरुष मन का संयम धारण करके प्रसन्न मुख और प्रसन्न चित्त के द्वारा मैत्री आदि भावनाओं को भाए।

राजवार्तिक ग्रन्थ में कहा है - प्रसन्नमुख साधु प्रशस्त ध्यान करें। उसमें एकाग्रमन होकर, राग, द्वेष, मोह का उपशम करके कुशलता से शरीर क्रियाओं का निग्रह करके मन्द श्वासोच्छ्वास लेता हुआ निश्चित लक्ष्य वाला होवे।

अष्टांगयोग का फल

अष्टाङ्गयोगविधिमतः सुधीः प्रसाध्य

ध्यानामृतमश्नुते भवतृप्तिमाप्नुते ।

पुष्टं मनश्च वचनं मधुरं सुलभ्य

चैतन्यकेलिमवनौ कुरुते स भव्यः ॥106॥

इस प्रकार से इस लोक में जो बुद्धिमान पुरुष इस अष्टांग योग की विधि का साधन करके ध्यानामृतरूप भोजन से उत्पन्न तृप्ति को प्राप्त करके वह अपना मन पुष्ट करता है। मधुर वचनों का लाभ प्राप्त करके चैतन्य केलि अर्थात् चैतन्य की क्रीड़ा को करता है वह इस पृथ्वी पर भव्य है।

सम्पूर्ण रूप में योग-साधना करके ही योगी अपनी आत्मा में परमानन्द का आस्वाद करता है। अष्टाङ्गयोग की विधि की सिद्धि करके भव्य योगी ध्यान से तृप्ति को प्राप्त करके मन से सन्तुष्ट होता है तथा आत्मा के साथ क्रीड़ा करके परम आनन्द का अनुभव करता है।



UNIT - 5:

ध्यान का सैद्धांतिक और वैज्ञानिक अध्ययन



Chapter 5.1 – ध्यान का सैद्धान्तिक अध्ययन

ध्यान के 4 प्रकार बताए हैं:

1. आर्त ध्यान (अशुभ)
2. रौद्र ध्यान (अशुभ)
3. धर्म ध्यान (शुभ)
4. शुक्ल ध्यान (शुभ)

आर्त-रौद्र ध्यान प्रायः सभी संसारी जीवों के निरंतर स्वतः ही, बिना प्रयास के चलते रहते हैं। यह दोनों ध्यान अशुभ हैं और संसार का कारण हैं। (यह विषय इस पुस्तक से बाहर का है)

वर्तमान अवस्था में हम शुक्लध्यान नहीं कर सकते। हमारे लिए 'धर्म ध्यान' ही उपादेय है और अर्ह ध्यान में इसी पर focus है।

यहाँ पर हम धर्म ध्यान को विस्तार से पढ़ेंगे।

धर्म ध्यान

धर्म ध्यान से कर्म जलते हैं। आत्मा में अपने ही भावों से जो सूक्ष्म परमाणु अनन्त संख्या में आकर चिपकते रहते हैं और बहुत समय तक बंधे रहते हैं उसे कर्म (Karma) कहते हैं। इन कर्मों का कार्य आत्मा में सूक्ष्म स्तर पर राग-द्वेष उत्पन्न करना है। राग-द्वेष की प्रवृत्ति बढ़ते-बढ़ते मन, वचन, काय के माध्यम से अनेक कार्यों, इच्छाओं, कलुषताओं के रूप में अभिव्यक्त होने लगती है।

यह चार प्रकार का होता है।

1. **आज्ञाविचय-** शाश्वत सिद्धांतों को, जिनेन्द्र भगवान की वाणी को श्रद्धापूर्वक बिना तर्क के स्वीकार करना और उनका चिंतन-मनन करना आज्ञाविचय धर्म ध्यान कहलाता है।
2. **अपायविचय-** दूसरे दुखी प्राणियों के दुःख दूर करने का निरंतर चिंतन व उपाय खोजना अपायविचय धर्म ध्यान कहलाता है।
3. **विपाकविचय-** कर्मों और कर्म के फलों का चिंतन करना; स्थूल जगत से सूक्ष्म की ओर ले जाने वाला विपाकविचय धर्म ध्यान कहलाता है।
4. **संस्थानविचय-** लोक, 4 गति, स्वर्ग-नरक आदि का चिंतन करना संस्थानविचय धर्म ध्यान कहलाता है।

यह **संस्थानविचय धर्म ध्यान** पुनः चार प्रकार का है:

1. **पिंडस्थ-** पिंड(अपने शरीर), शरीर के किसी भाग या स्थान या अरिहंत अवस्था आदि का चिंतन करना पिंडस्थ ध्यान कहलाता है।
2. **पदस्थ-** मंत्र या बीजाक्षरों के आलाम्बन से ध्यान- जैसे अर्ह, णमोकर मंत्र के अक्षर आदि का ध्यान करना पदस्थ ध्यान कहलाता है।
3. **रूपस्थ-** अरिहंत भगवान के गुणों



का, वैभव का (समवशरण, अष्ट प्रतिहार्य, आदि), रूप (सुंदरता आदि) का ध्यान करना रूपस्थ ध्यान कहलाता है।

4. रूपातीत- सिद्ध शुद्ध आत्माओं का ध्यान रूपातीत ध्यान कहलाता है।

अर्ह ध्यान

‘अर्ह’ के ध्यान से आत्मा में अनंत काल से बंधे हुआ कर्म ईंधन जलने लगता है। राग-द्वेष समाप्त होते हैं, इच्छाएँ शान्त होती हैं, कलुषताएँ दूर होकर चिर शान्ति उत्पन्न करती हैं।

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म वाचकं परमेष्ठिनः ।

सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥

अर्थ- ‘अर्ह’ यह अक्षर सिद्ध समूह परमेष्ठी का सद् बीज है और ब्रह्म का वाचक है। उसे मैं सब ओर से प्रणाम करता हूँ।

अर्ह एक दृष्टि

अकारो परमो बोधो

रेफो विश्वावलोकहक् ।

हकारोऽनन्तवीर्यात्मा

बिन्दुः स्यादुत्तमं सुखम् ॥

अर्थ- ‘अर्ह’ में अकार परमबोध (उत्कृष्ट ज्ञान) है, रेफ समस्त लोक को देखने की दृष्टि है, हकार अनन्त शक्ति स्वरूप है और बिन्दु उत्तम सुख है।

पिण्डस्थ ध्यान विधि

पिण्ड अर्थात् अपना शरीर। उस शरीर में अर्हन्त

के स्वरूप का ध्यान करना पिण्डस्थ ध्यान कहा जाता है। कहा भी है-

णियणाहिकमलमज्झो

परिट्ठयं विप्पुफरंतरवितेयं ।

झाएह अरुहरुवं

झाणं तं मुणह पिंडत्थं ।

-(ज्ञान सार: 19)

अर्थ- निज नाभि कमल के मध्य में विस्फुरित सूर्य के तेज से चारों ओर से घिरे अर्हत् के स्वरूप का ध्यान करना पिण्डस्थ ध्यान जानो। इसी तरह-

झायह णियकरमज्झो

भालयले हिययकंठदेसम्मि ।

जिणरुवं रवितेयं

पिंडत्थं मुणह झाणमिणं ।

-(ज्ञानसार: 20)



अर्थात्- निजकर के मध्य में, भाल तल (ललाट) पर, हृदय स्थान पर, कण्ठस्थान पर सूर्य के तेजस्वरूप जिन रूप का यह ध्यान पिण्डस्थ ध्यान जानो।

पदस्थ ध्यान विधि

पदस्थ ध्यान में अक्षरों का या मन्त्र पद का ध्यान किया जाता है। कहा भी है:-

अष्टमवग्गचउत्थं

सत्तमवग्गस्स वीयवण्णेण।

अक्कंतमुवरि सुण्णं

सुसंयुयं मुणह तं तच्चं ॥

-(ज्ञानसार: 21)

अर्थ- अष्टम वर्ग के चतुर्थ अक्षर और सप्तम वर्ग के द्वितीय अक्षर से आक्रान्त ऊपर शून्य संयुक्त तत्व का मनन करो।

तात्पर्य - 'हं' का चिन्तन करो। अहं का चिन्तन करते-करते 'हं' का चिन्तन करना चाहिए।

अष्टदलकमलमज्झे अरुहं वेदेह परमवीयेहिं।

पत्तेसु तहय वण्णा दलंतरे सत्तवण्णा य ॥

-(ज्ञान सार: 26)

अर्थ- अष्टदल कमल के मध्य 'अहं' को परम बीजों के द्वारा वेष्टित करके पत्रों पर वर्णों को लिख कर दलंतर में सात वर्णों का ध्यान करें।



Chapter 5.2 - ध्यान का वैज्ञानिक अध्ययन

अभी तक हमने ध्यान के सिद्धांतों का अध्ययन किया और उनकी विधि और लाभ जाने, इस अध्याय में अब हम ध्यान को वर्तमान कालीन विज्ञान की नज़र से जानेंगे।

मन कैसा होता है?

मन को पकड़ पाना अत्यंत कठिन है। बड़े बड़े योगी भी इस मन को नहीं पकड़ पाते। मन का तंत्र विज्ञान इतना जटिल है कि वैज्ञानिक भी आज तक इसके बारे में सही जानकारी देने में असफल रहें हैं। मन ही है जो व्यक्ति को क्षण में उत्साहित बना देता है और क्षण में निराशा से भर देता है।

वर्तमान विज्ञान के अनुसार मन के तीन रूप बताए गए हैं -

1. चेतन मन (Conscious Mind)
2. अवचेतन मन (Subconscious Mind)
3. अनात्मबोधि मन (Unconscious Mind)

चेतन मन (Conscious Mind) को बुद्धि से जोड़ा जाता है। जो सब पढ़ाई लिखाई होती है वह Mind तक ही रह जाती है। किताबें पढ़ने वाले बच्चे इस mind का ही उपयोग करते हैं और जिनका mind ज्यादा सक्रिय होता है उन्हें ज्यादा बुद्धिमान माना जाता है। ऐसे बच्चों, सामान्य परीक्षा या competitive exams में बेहतर करते हैं और उन्हें ही लौकिक

व्यवस्था में सफल माना जाता है। आज जितने भी स्कूल, कॉलेज के बच्चे हैं उन्हें इसी mind के शक्तिशाली या कमजोर होने से सफलता या असफलता कि श्रेणी में रखा जाता है। किन्तु यह बहुत बड़ा भ्रम है। इसमें दोष आज कि शिक्षा पद्यती का, और कुछ हद तक माता पिता का भी है।

वास्तव में यह तीक्ष्ण बुद्धि, sharp memory, grasping power, एक क्षमता है जो Mind में नहीं अपितु आत्मा के अनंत ज्ञान का उधड़ा-प्रकट ज्ञान (क्षयोपशम) का अंश मात्र है। इसे जैन विज्ञान मति ज्ञान आदि नामों से बताता है। अर्थात् **mind के sharp होने का वास्तविक अर्थ है ज्ञान का क्षयोपशम अधिक होना।**

इसके साथ साथ अन्य दो mind भी हैं, **अवचेतन मन (Subconscious Mind) और अनात्मबोधि मन (Unconscious Mind)**। यह दोनों minds पहले से ही अपने अंदर programming किए हुए हैं और अपने अनुसार हमें चलाने का प्रयास करते हैं। जैसे कि हमने कुछ पढ़ा, सुना, विचार किया उसके बवाजूद वह हमसे वही करा देते हैं जो हम आज तक करते आए हैं। जैन विज्ञान इन्हे पूर्वबद्ध संस्कार और कर्मफल के रूप में परिभाषित करता है।

ऊपर बताए गए तीन minds के अलावा भी अन्य प्रकार के mind को विज्ञान बताता है



जिसमें से एक Super Conscious Mind भी है। परन्तु वास्तविकता यह है कि हमारा आत्म तत्व, चेतना एक ऐसा सूक्ष्म द्रव्य है जो किसी भी उपकरण से पकड़ा नहीं जा सकता और वही ज्ञान का पिंड है, अनंत शक्ति संपन्न, अलौकिक स्वरूप परन्तु कर्म के संस्कारों के कारण हमारा मन आत्मा पर हावी हो जाता है और हमें अपने अस्तित्व को पहचानने नहीं देता।

इस अनंत ज्ञान, अनंत शक्ति को बाँधने वाले कुछ सूक्ष्म पदार्थ हैं जिन्हें कर्म परमाणु कहते हैं। अपने ही भावों के कारण उस कर्म आवरण का कभी थोड़ा कम हो जाना कभी ज्यादा हो जाना **क्षयोपशम** कहलाता है। **क्षयोपशम अधिक है तो Conscious mind मजबूत है और क्षयोपशम कम है तो conscious mind कमजोर है।** पहले बंधे हुए भावों का प्रभाव आत्मा पर इतना गहरा होता है कि आत्मा उन्हीं संस्कारों को, आवेगों को मन के माध्यम से पुनः पुनः दोहराता रहता है।

यह समझने के बाद अब प्रयोजन है कि किस प्रकार हम अपने मन में चल रहे भावों को समझ पाएँ, पढ़ पाएँ और उसके उपरान्त धीरे धीरे नियंत्रण में ला पाएँ, जो कि ध्यान की प्रक्रिया से ही संभव है।

ध्यान का मन पर प्रभाव

ध्यान का प्रभाव मन पर पड़ता है। आत्मा के

पूर्व संस्कारों पर, भावों पर, गहराई से जब कोई बात प्रभाव डालती है, तभी नये भाव उत्पन्न होने की प्रक्रिया आरम्भ होती है अन्यथा पुराने संस्कार ही सक्रिय होकर बुद्धि और मन के माध्यम से काम करते रहते हैं।

ध्यान से conscious mind की सक्रियता कम होती है क्योंकि इस mind की सक्रियता पहले की स्मृतियों से बनी रहती है। जो पूर्व धारणाएँ पहले से फिट हो गई हैं उन्हीं के अनुसार सोचना, देखना और जानने के कार्य जब तक नहीं रुकता जब तक नई चेतना, नया ज्ञान भीतर से उत्पन्न होकर अपने जीवन को प्रभावित नहीं करता।

ध्यान की स्थिति में पहुँचकर जब कोई साधक अपने भीतर नवीन विचार फेकता है जैसे दया, प्रेम, क्षमा आदि, तब यह विचार भीतर के दोनों minds को प्रभावित करते हैं। उसके उपरान्त भीतर से जागृति (Awareness) उत्पन्न होना प्रारंभ होती है, तब भीतर से परिवर्तन का क्रम आरम्भ होता है। निरंतर अभ्यास से यह परिवर्तन हमारे मन, मस्तिष्क, शरीर और वचनों में प्रतीत होने लगता है। तब वह स्वं से ऊपर, पर को भी प्रभावित करने लगता है। अतः एक जीवन अन्य कई जीवनो को भी प्रभावित करने की शक्ति ग्रहण कर लेता है।

यही वास्तविक रूप में ध्यान का फल है जो हमें स्वं से जोड़ता है।



Chapter 5.3 – क्या करें और क्या न करें

DO'S (करें)

1. नियमित अभ्यास, रोज 10 मिनट का अभ्यास, हफ्ते में एक दिन के 1 घण्टे से बेहतर है।

नियमित व्यायाम एवं प्राणायाम आपके ऊर्जा शरीर की नकारात्मकता को समाप्त करता है।

2. अपनी रीढ़ की हड्डी गर्दन व सिर को सीधा रखे एवं उस आसन में बैठे जिसमें आप देर तक आसानी से बैठ सकें।

3. ध्यान के लिए शान्त, खुला व ऐसा स्थान चुने जो ऊर्जा की दृष्टि से भी साफ हो, वह

आपके शयनकक्ष के अलावा कोई कमरा भी हो सकता है जहाँ सूर्य का प्रकाश आता हो।

4. ध्यान के समय बहुत सारे विचार आयेंगे। उनके साथ बहे नहीं, न ही उन्हें रोके।

केवल एक बिन्दु पर अपना ध्यान केन्द्रित करके उन्हें आता-जाता देखे।

5. सहज भाव से करना, बिना किसी तनाव या चिन्ता के हो सकता है हम किसी बीमारी से मुक्ति पाने के लिए ध्यान कर रहे हो परन्तु जिस समय ध्यान में बैठे उस समय एक दम

सहज होकर सब चिन्ताओं को भुलाकर अपने आत्म तत्व से योग का अभ्यास करें। ऐसा

करने से आप पाएँगे कि रोग शीघ्र शान्त होगा।

6. नित्य अपनी बुद्धि को सकारात्मक (positive) संकल्पों का भोजन कराएँ।

7. शाकाहारी भोजन सात्विक जीवन शैली अपनाने का प्रयास करें अत्यधिक तला, भुना

बाजार का भोजन विचारों में विकृति पैदा करता है।

DON'T (क्या न करें)

1. बहुत ज्यादा शक्ति का प्रयोग नहीं करें यह विभ्रम को जन्म देता है।

2. स्वयं निर्णायक न बने, मानसिक एवं वाचनिक निन्दा से बचे।

3. अपने आप से बहुत ज्यादा अपेक्षा नहीं करें। यह लम्बे समय तक करने वाला पुरुषार्थ है। एक ही जीवन हमारी समस्त समस्याओं के हल के लिए पर्याप्त है, यह आवश्यक नहीं।

4. मांस, शराब, जुआ, चोरी, अनावश्यक झूठ से परहेज करें। यह सब आपके ऊर्जा शरीर को दूषित करते हैं, अतः ध्यान में बाधक है।

5. जितना गुरु कहें उससे ज्यादा की कल्पना न करें। अधिक कल्पना आपको वास्तविक अनुभव से दूर कर देती है।

समय

1. ध्यान के लिए सर्वोत्तम बेला तो ब्रह्म मुहूर्त ही है (सूर्योदय से पहले)।



2. मध्यम-संधि काल में या सोने से पहले।

3. जघन्य-जब आप शान्त चित्त से बैठ सके। भोजन के बाद एक-डेढ़ घण्टे तक नहीं करना चाहिए।

DESC.	Do's	Don'ts
ध्यान किस समय?	• ब्रह्म मुहरत (before sunrise) • संध्या काल • सोने से पहले (Before Sleep)	• खाने के तुरंत बाद
ध्यान कहाँ ?	• खुले वातावरण में • जहाँ सूर्य का प्रकाश आता हो • शांत	• शयन कक्ष में • बंद कमरे में • शोर गुल में • Phone/gadgets alerts/ringers on
ध्यान किस दिशा में?	• उत्तर • पूर्व	• दक्षिण • पश्चिम
ध्यान कैसे बैठ कर?	• ज़मीन पर आसन(mat) बिछा कर • रीढ़ की हड्डी सीधी • गर्दन सीधी • स्थिर आसन • आँखें बंद रख कर • हथेलियाँ आसमान की तरफ ज्ञान मुद्रा में	• ज़मीन पर बिना आसन (mat) • झुक कर • बार बार आसन बदल कर • निद्रा ना आने दें
ध्यान के समय श्वास कैसी?	• सहज	• नियंत्रित



DESC.	Do's	Don'ts
ध्यान में विचार कैसे?	• केंद्रित	• अव्यवस्थित
ध्यान में आलाम्बन?	• मंत्रों का • केन्द्रों का • गुरु का • एक विषय • एक ध्येय • शांत ध्वनि	• अशुभ का • बिना आलाम्बन के
ध्यान की अवधि?	• प्रतिदिन • कम से कम 5-15 मिनट • धीरे धीरे 30 मिनट से 1 घंटा	• कभी 1 बार
ध्यान से पूर्व?	• सूक्ष्म व्यायाम, प्रणायाम सहायक	• सीधे ध्यान में बैठना
ध्यान का प्रारम्भ?	• श्वासों पर ध्यान देकर	-
ध्यान के अंत में?	• प्रार्थना या affirmation • अपनी आँखों को ध्यान के पश्चात धीमे से खोले	• ध्यान छोड़ कर एकदम से उठ जाना



DESCRIPTION	Do's	Don'ts
ध्यान के समय पोषाक?	• Comfortable, loose, preferably cotton breathable	• Fancy, tight fit, synthetic non breathable, non absorbent
Dhyan के लिए भोजन?	• सात्विक	• तामसिक / राजसिक
Facial Expression	• Smile • समभाव	• Tension • Frown
Generic	• Keep Trying, begin with baby steps	• Don't compare, don't judge, don't give up



Chapter 5.4 – अर्ह योग और आहार

कथं भुंजेज्ज- कैसे भोजन करें?

कथं भुंजेज्ज- कैसे भोजन करें?

जदं भुंजेज्ज - यत्तपूर्वक भोजन करें।

भोजन विवेक पूर्वक सावधानी से करना चाहिए। भोजन रात्रि में न करें। रात्रि में भोजन करने से रात्रि में उत्पन्न होने वाले जीव उस भोजन में निर्मित हो जाते हैं। रात्रि में जीवों की उत्पत्ति वातावरण में सहज ही होती है। इसीलिये रात्रि में बना भोजन दिन में करना यह भी पाप का कारण तो है ही वैज्ञानिक रूप से भी रोग का कारण है।

गैसट्रिक, कब्ज आदि बीमारियों की उत्पत्ति का मूल कारण रात्रि भोजन ही है। रात्रि में, सूर्य प्रकाश से मिलने वाली अल्ट्रावायलेट किरणों का अभाव होने से भोजन का पाचन नहीं होता। भोजन पाचन में 5-6 घण्टे लगते हैं, इसलिए सोने के 5-6 घंटे पहले ही भोजन कर लेना चाहिए। भोजन बैठकर ही करना चाहिए। यही पुरातन सभ्यता है जो स्वास्थ्य लाभ देती है। खड़े होकर टहलते हुए भोजन करना पशुता का प्रतीक है।

भोजन के विषय में नीरोग रहने की एक प्राचीन उक्ति

**“हितभुक् मितभुक् शाकभुक् शतपदगामी
वामपार्श्वशायी”।**

अर्थात् भोजन हितकर हो, उचित मात्रा में हो, शाकयुक्त (हरी सब्जियों, सलाद आदि से

भरपूर) हो। भोजन के बाद सौ कदम चलें और फिर थोड़ी देर के लिए बाँयी करवट लें।

नियमित समय पर परिमित (उचित मात्रा में) भोजन करना ही संयम है।

शोध से वैज्ञानिकों ने यह बताया है कि दुनिया में भूखे रहने से इतने लोग नहीं मरते, जितने कि अधिक भोजन करने से।

हितभुक् हितकारी भोजन

भोजन शाकाहारी ही हो। मनुष्य का शरीर मांस भोजन के लिए प्रतिकूल है। मांसाहारी लोग जानवरों की बीमारी को अपने भीतर ग्रहण कर लेते हैं। फास्ट फूड और जंक फूड स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं। जिन वस्तुओं को बने हुए कितना समय हुआ है, यह ज्ञात नहीं हो तो ऐसी वस्तुएँ नहीं खाना चाहिए। बाजार के पैकेट बंद खाद्य पदार्थों में अब मांसाहार और जैविक उत्पादों का प्रवेश बहुतायत हो गया है। नशा देने वाले पदार्थ जैसे- तम्बाखू, सिगरेट गुटखा स्वास्थ्य के लिए बहुत घातक हैं और कैंसर जैसी भयावह बीम के मुख्य कारण हैं। भगवान महावीर ने बताया कि वर्षा 3 दिन, गर्मी में 5 दिन शीत में 7 दिन बाद पिसा हुआ आटा, उससे बनी हुई वस्तुएँ और पिसे हुए मसालों में उसी रंग के, उसी गंध के जीवों की उत्पत्ति अपने आप हो जाती।

कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जिनका मुख की लार से संयोग होते ही जीवों की उत्पत्ति हो जाती



है। यह आम व्यक्ति भी प्रयोग करके समझ सकता है। दाल के बेसन से बने पदार्थों का दही, छाछ के साथ लार का संयोग होने से जीवों की उत्पत्ति हो जाती है, इसे ही द्विदल का दोष कहते हैं।

मितभुक् परिमित भोजन

परिमित भोजन यानि भोजन उचित मात्रा में करना और कम बार करना। भोजन सीमित मात्रा में ही करें। ज्यादा भोजन करने से अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं। ज्यादा खाने वाला व्यक्ति आलसी, बात न मानने वाला और स्मरण शक्ति से कमजोर हो जाता है। भोजन की मात्रा का नियन्त्रण करने से अनेक रोगों पर नियन्त्रण हो जाता है। हर समय कुछ न कुछ खाने की आदत शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी घटाती है। शरीर को आवश्यक प्राण ऊर्जा और पाचन तन्त्र को आराम तभी मिलता है जब भोजन की मात्रा सीमित हो।

बहुत बार भोजन करना भी एक रोग है। रोगी व्यक्ति को ही बार-बार भोजन करने की सलाह डॉक्टर देते हैं। आजकल लोगों को सबसे ज्यादा शिकायत वजन बढ़ने की है और डॉक्टर लोग सलाह देते हैं कि थोड़ा-थोड़ा खाएँ और कई बार खाएँ। यह सलाह अब गलत साबित होने लगी है। आखिरकार मानना वही पड़ता है जो प्राचीन ऋषि-मुनियों ने कहा है। साधु संत दिन में ही एक बार भोजन करते हैं और गृहस्थी में रहने वाला दिन में दो बार भोजन करे। यह नियम धर्म की मर्यादा में है। जब तक भूख अच्छी नहीं लगेगी, भोजन का पाचन भी अच्छा नहीं होगा। यह तभी हो सकता है जब

आप समय पर भोजन करने की आदत डालें।

एक बार, दो बार भोजन करे तो बार-बार भूख लगने से बार-बार खाने की आदत से बच सकते हैं जिससे समय की बचत होगी और भोजन करने का लुप्त उठाया जा सकेगा। इससे वजन नियंत्रित रोगा और भोजन की पौष्टिकता का भी ख्याल रहेगा। जो लोग बार-बार भोजन करते हैं वे भोजन की पौष्टिकता को भूल जाते हैं क्योंकि उनका उद्देश्य मात्र पेट की पीड़ा को दूर करने का रह जाता है और वे जैसा-तैसा भोजन करके स्वास्थ्य बिगाड़ लेते हैं।

शाकभुक्- शाकाहारी भोजन

शाकाहारी भोजन vs माँसाहारी भोजन

शाकाहारी भोजन करना ही स्वास्थ्यप्रद है। शाकाहारी भोजन जितना सुपाच्य और मनुष्य के शरीर के अनुकूल होता है उतना माँसाहारी भोजन नहीं होता है। माँसाहार मानवीय नहीं अपितु राक्षसी भोजन है।

शाकाहार का शाब्दिक अर्थ

“शाक” शब्द संस्कृत की ‘शक्’ धातु से बना है। जिसका अर्थ है- योग्य होना, समर्थ होना, शक्तिशाली होना, सहन करना। ‘शाक’ शब्द का अर्थ ही अपने में बल और पराक्रम है। शक्ति शब्द भी इसी ‘शक्’ धातु से बनता है। शाकाहार का शाब्दिक अर्थ होता है ऐसा आहार जो मनुष्य को बलवान, समर्थ और रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करे।

Vegetarian शब्द का अर्थ



‘वेजीटेरियन (vegetarian) शब्द लैटिन भाषा के ‘वेजीटस’ शब्द से बना है। जिसका अर्थ है- स्वस्थ, समर्थ, विश्वस्त, ठोस, समग्र, परिपूर्ण, ताजा, जीवन्त। फ्रांसीसी में ‘वेजीटेबिल (vegetable)’ शब्द का अर्थ है- जीवन संचारक, जीवन से भरपूर।

Albert Einstein के विचार

महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स (Albert Einstein) पूर्णतः शाकाहारी थे। उनका कहना था कि शाकाहार का हमारी प्रकृति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि पूरी दुनिया शाकाहार को अपना ले तो मनुष्य का भाग्य पलट सकता है। माँसाहार करने वालों को सचेत करते हुए उन्होंने कहा कि- ‘जब हम खुद मृत प्राणियों की जीती-जागती कब्रें हैं, तब फिर हम इस दुनिया में आदर्श स्थितियों की कल्पना कैसे कर सकते हैं।’

यदि माँसाहार नहीं घटाया तो ?

यह आरोप लगाना भी बेबुनियादी है कि विश्व में अन्न की कमी है। शाकाहार से खाद्य संकट उत्पन्न हो सकता है। वस्तुतः तथ्य यह है कि अमरीकी लोग पशुओं से माँस प्राप्त करने के लिए पशुओं को जितना अन्न, सोयाबीन खिलाते हैं, उतने अन्न से एक अरब तीन करोड़ लोगों का पेट भरा जा सकता है। इस बात को ध्यान में रखकर वाशिंगटन स्थित ‘वर्ल्डवाच इंस्टीट्यूट अमेरिका ने चेतावनी दी है कि यदि माँसाहार नहीं घटाया गया तो विश्व को बहुत बड़े खाद्य संकट का सामना करना पड़ेगा।

क्या अण्डे शाकाहारी भोजन है?

TV के माध्यम से अण्डे को शाकाहारी बताया जा रहा यह भी पूर्णतः असत्य है। 1971 में मिशीगन यूनीवर्सिटी ऑफ अमेरिका के वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि संसार का कोई अण्डा निर्जीव नहीं है फिर चाहे वह निषेचित (fertilised) किया गया हो या अनिषेचित (unfertilised)। इन अनिषेचित (अफलनशील) अण्डों को मृत नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इन पर भी कुछ प्रक्रियाएँ करके चूजे बाहर लाये जा सकते हैं। इस प्रक्रिया (process) को ‘पार्थेनोजीनेसिस (parthenogenesis)’ कहते हैं। H.G. Welse ने इसका पूरा वर्णन ‘Science and

एक वैज्ञानिक खोज 100 ग्राम खाद्य पदार्थ के तत्त्व की तालिका					
पदार्थ	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	चर्बी	क्षार	ऊर्जा
गेहूँ	13.2	79.2	1.7	1.08	353
मूँग	24.00	56.6	1.3	3.06	332
सोयाबीन	43.02	22.9	19.5	4.06	432
अंडा	3.03	-	13.3	1.00	173

life’ नाम की किताब में किया है। बिना जीव के किसी भी अण्डे का रूप नहीं बन सकता है। जिस अण्डे में जीव नहीं होता वह सड़ जाएगा। वह अण्डा खाने योग्य ही नहीं रहेगा। अण्डे का विकास उसमें रहने वाले भ्रूण का विकास है। अण्डे में हवा जाने की नैसर्गिक व्यवस्था है। सफेद खोल के अन्दर बने सूक्ष्म छिद्रों में होकर ऑक्सीजन अन्दर जाती है और जर्दी भी CO2



(कार्बन डाइ ऑक्साइड) को बाहर फेंकती है। इसी से अण्डे का भ्रूण जीवित रहकर विकास करता है।

जो डॉक्टर प्रोटीन की अधिकता से अण्डा खाने का सुझाव देते हैं वह भी अनुचित है। उन्हें इस तालिका पर ध्यान देना चाहिए।

क्या जंकफूड, फास्टफूड शाकाहारी हैं?

इसके अलावा बाजार में सुलभता से मिलने वाले जंकफूड, फास्टफूड भी शाकाहारी नहीं है, क्योंकि इनमें अनेक जानवरों की चर्बी, हड्डी, समुद्री जीव जन्तुओं के सूखे पाउडर एवं अण्डा आदि का परिरक्षक (Preservative) के रूप में प्रयोग किया ही जाता है। पिज्जा, बर्गर, मैगी, मसाला डोसा, नूडल्स, पावभाजी, सैंडविच हॉटडॉग आदि बाजारु भोजन जंकफूड कहलाता है। **जंक का अर्थ इंग्लिश डिक्शनरी में पुरानी, बेकार या कम उपयोग की वस्तुएँ कवाड़, कूड़ा करकट बताया है।** ऑक्सफोर्ट (Oxford) डिक्शनरी में जंकफूड (Junk Food) का अर्थ लिखा है- “Food that is not very good for you but that is ready to eat or quick to prepare” तुरन्त बनने या खाये जाना वाला खाद्य पदार्थ जो यद्यपि स्वास्थ्यकर नहीं है। Oxford को ही इंग्लिश-इंग्लिश डिक्शनरी में जंक फूड का अर्थ है- “Food that is thought to be bad for your health” अर्थात् वह भोजन जो आपके स्वास्थ्य के लिए बहुत बुरा समझा गया है, जंकफूड है। इतनी स्पष्ट चेतावनी के बाद भी यदि आप ऐसी चीजें खाते हैं तो इसका अर्थ है कि आप पढ़े-लिखे गँवार (Literate

Barbarian) हैं।

केवल विदेशी भोजन को ही जंकफूड नहीं समझना चाहिए किन्तु समोसा, आलूबण्डा, आलू से बने परांठे, मसाला डोसा, अधिक मसालों में तला भुना चटपटा भोजन भी जंकफूड में आता है।

जंकफूड से होने वाली बीमारियाँ

आज की आधुनिक जीवन शैली में बच्चों, युवा विद्यार्थियों में, होटलों में और नौकरीपेशा वर्ग में इस फूड का प्रचलन जरूरत से ज्यादा बढ़ गया है। सबसे ज्यादा बच्चे साथ ही साथ बड़े भी इस जंकफूड से होने वाली बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। जैसे- मोटापा बढ़ना, कब्ज बनी रहना, डायबिटीज टाइप-2, हाईपरटेंशन आदि के साथ-साथ ऐसी बीमारियाँ भी बढ़ रही हैं जो विटामिन्स, मिनेरल्स एवं आयरन की कमी से होती हैं। समय की बचत लिए महिलाएँ और नौकरीपेशा वर्ग ऐसे भोजन को उचित समझते हैं। जिसके कारण उन्हें भी इन्हीं शारीरिक बीमारियों का शिकार बनना पड़ रहा है। बच्चों या बड़ों में चिड़चिड़ापन आने की बहुत बड़ी वजह यह जंकफूड है। इस जंकफूड से आँतों में जंग लगती है। आँतें खराब होते ही पूरे शरीर का संचालन बिगड़ जाता है। यदि अभिभावक स्वयं इस फूड से बचकर बच्चों को इस भोजन के नुकसान के बारे में प्यार से समझाएँ तो आने वाली पीढ़ी बेहतर ढंग से जीवन जी सकेगी। इसके साथ ही स्कूल, कॉलेज में अध्यापक विद्यार्थियों को इसकी जानकारी अवश्य दें ताकि बच्चों की शिक्षा मूल्यवान और गुणवान हो जाए।



डॉक्टरों की स्पष्ट घोषणा

डॉक्टरों की अब स्पष्ट घोषणा है कि यह जंक फूड हर उम्र के लोगों के लिए हानिकारक है। हृदयरोग, रक्तचाप, पैरालिसिस जैसी बीमारियों के लिए यही भोजन जिम्मेदार है। जंक फूड में पौष्टिकता नहीं रहती है। संतुलित आहार में 55 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 15-20 प्रतिशत प्रोटीन, 25-30 प्रतिशत बसा एवं विटामिन, जिंक तथा आयरन भी होना चाहिए।

जैन होटल vs शुद्ध रसोईघर

बाजार में कुछ चीजें जैन के नाम से मिलती हैं जैसे- जैन समोसा, जैन आइस्क्रीम, जैन पावभाजी आदि। ये सभी खाने योग्य नहीं हैं। इसके आगे जैन इसलिए लिखा जाता है क्योंकि 'जैन' शब्द शुद्ध शाकाहारी की पहचान कराने वाला है। जैन लिखने से इसमें सीधे तरीके से मांस का प्रयोग नहीं होता है, बस इतना ही जानना किन्तु पुरानी, बासी मैदा, खमण उठाने के लिए कच्ची छाउ आदि सड़ी गली सभी चीजों का प्रयोग तो किया हो जाता है। जैन होटल कहने भर से वह आपकी शुद्ध रसोईघर तो नहीं बन सकती है। उस होटल में बासी सड़ी गली चीजों का भी उपयोग होता है। अनेक रोगों के कीटाणु होटल के ही प्लेट, ग्लास और चम्मच के माध्यम से शरीर में प्रवेश करते हैं, यह बात वैज्ञानिक भी मानते हैं।

पेय पदार्थ किससे युक्त?

इसके अलावा पेप्सी, कोका-कोला, थम्सअप, फेंटा, ग्लाइस, मिरिण्डा, माजा आदि पेय पदार्थ ऐसिड और एल्कोहल युक्त हैं। स्वीडन के स्कूलों में इन सभी खाद्य पदार्थ और पेय

पदार्थों को बच्चों को नहीं खिलाया- पिलाया जाता है। इस पर रोक लगी है। फ्रांस, बेल्जियम में इन कोल्ड्रिंक्स को बेचना और पीना दोनों ही प्रतिबंधित है। आंध्रप्रदेश के किसान खेतों में कीटनाशक के लिए इन कोका-कोला आदि पेय पदार्थों का उपयोग तक कर लेते हैं क्योंकि ये कीटनाशक की अपेक्षा सस्ते पड़ते हैं। कोल्ड्रिंक्स पीने से हड्डियाँ गलती है, कैल्शियम की कमी होती है जिससे शरीर का विकास रुक जाता है, दाँत जल्दी गिरने लगते हैं।

बच्चों को अप्रत्यक्ष रूप से मांसाहार कैसे परोसा जा रहा है?

आज बाजार में मिलने वाले सभी उत्पाद जो बच्चों का मन मोहते हैं, बच्चों को अप्रत्यक्ष रूप से मांसाहार परोस रहे हैं। बाजार में टॉफी, चॉकलेट मैगी, कुरकुरे, नूडल्स, सभी तरीके के बिस्किट, आइस्क्रीम, केक जैसे पैकेट बंद या खुले आइटम आदि मछली के तेल से एवं समुद्री जीव जन्तुओं के मिक्चर से टेस्टी लग रहे हैं। ऊपर गिनाये गए इन आइटमों का कोई विश्वास नहीं है कि इनमें क्या है? शाकाहार आन्दोलन करने वाली बड़ी-बड़ी संस्थाएँ भी खोज-बीन करने के बाद अंततः इसी निष्कर्ष पर पहुँची है कि- 'आप यदि बाजार का एक बिस्किट अपने मुख में रखते हो तो उसके रंग, आकार और फ्लेवर के अलावा इसमें क्या है? यह नहीं कहा जा सकता।' कारण यह है कि खोज-बीन में लगी इन संस्थाओं को भी सही जानकारी देने से परहेज किया जाता है और जान बूझकर इनके पैकेटों पर सामग्री (Contents) का सीधा नाम न लिखकर E Numbers लिख दिये जाते हैं, जो कि



प्रायः मछलियों और जानवरों से प्राप्त होते हैं। इसके बावजूद भी इनके पैकेटों पर शाकाहारी हरा चिन्ह (Green Symbol) लगा देते हैं। इंटरनेट पर इन नंबरों को डालकर आप इनके स्रोत के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

शाकाहारी विकल्प

आज बाजार में कुछ पदार्थों के शाकाहारी विकल्प भी उपलब्ध हैं। साबुन, दूध पेस्ट आदि शाकाहारी भी मिल रहे हैं। जरूरत है सचेत और सावधान होने की। प्रिया, एलोवेरा, वॉटरमिलन, चंद्रिका, नीम, मेडीमिक्स आदि साबुन तथा दन्त कांति, स्माइल पेस्ट आदि भी उपयोगी हैं। आप स्वयं इस बारे में जानकारी एकत्रित कर पूर्ण शाकाहारी वास्तुओं का प्रयोग कर सकते हैं।

बाजार में मिलने वाले दूध, घी, दही भी क्या विश्वसनीय हैं?

जब आज बाजार में मिलने वाले दूध, घी, दही भी विश्वसनीय नहीं हैं तो फिर इन विदेशी फूड की क्या साख? दूध उत्पादक वर्षों से सिंथेटिक दूध बना रहे हैं। सिंथेटिक दूध-यूरिया, कॉस्टिक सोडा, रिफाइंड ऑयल, डिटर्जेंट, स्टार्च, ग्लूकोज और तालाब के पानी से बनाया जाता है। कुछ तरीके हैं जिनसे सिंथेटिक दूध की पहचान की जा सकती है।

प्राकृतिक दूध vs सिंथेटिक दूध

प्राकृतिक दूध का कोई खास स्वाद नहीं होता, यह बस जरा सा मीठा होता है। सिंथेटिक दूध कड़वा होता है। प्राकृतिक दूध में किसी तरह

की गंध नहीं होती जबकि मिलावटी दूध में गंध आती है। उंगलियों में लेकर रगड़ने पर प्राकृतिक दूध साबुन जैसा नहीं होता, जबकि सिंथेटिक दूध साबुन जैसा हो जाता है। प्राकृतिक दूध उबालने पर सफेद ही बना रहता है जबकि सिंथेटिक दूध पीला हो जाता है। इसी तरह जमाने पर असली दूध का रंग नहीं बदलता जबकि सिंथेटिक दूध पीला पड़ जाता है। अगर मिलावटी दूध में यूरिया मिलाकर आप तक पहुँचाया जाता है, तो उसका रंग असली दूध से कहीं अधिक पीलापन लिए होता है। असली दूध अम्लीय (पी-एच स्तर 6.8) जबकि सिंथेटिक दूध क्षारीय (खारा) होता है। अगर ताजे दूध का लिटमस पेपर पर परीक्षण किया जाए तो नीला लिटमस लाल तथा लाल लिटमस नीला हो जावेगा। अगर दूध मिलावटी हो तो ऐसा नहीं होगा।

यह मिलावटी दूध कैंसर का कारण है। इसमें मिला यूरिया गुर्दों का नाश करता है। कॉस्टिक सोडा उच्च रक्तचाप और दिल की बीमारियों से जूझ रहे लोगों के लिए धीमे जहर का काम करता है। यह गर्भस्थ शिशु को भी हानि पहुँचाता है।

गाय, बन्दर, गधा, कुत्ते, सुअर की चर्बी से नकली घी आदि बनाने वाले धन्धों की कमी नहीं है। कुल मिलाकर बड़े शहरों में रहने वाला पराधीन आदमी यह सब खाने-पीने के लिए मजबूर है। इस मजबूरी से आप कितना बच सकते हैं, आप सोचें। यह मजबूरी धर्म को भ्रष्ट तो कर ही रही है किंतु असमय में अनेक बीमारियों का कारण भी बन रही है।



क्या हम यमदूत को धीरे - धीरे अपने पास बुला रहे हैं?

जिस समय आप सिगरेट हाथ में लेते हैं, उस समय आपके हाथ में एक छोटी बंदूक होती है। आपके हाथ की परछाई एक बंदूक की तरह दिखती है। यह सिगरेट आपको ही मारने का संकेत देती है। बंदूक की गोली से तो दूसरा मरता है किन्तु सिगरेट से आदमी स्वयं का घात करता है। सिगरेट के धुंए का प्रत्येक कश आत्महत्या का प्रयास है।

सिगरेट की परिभाषा प्रोफेसर गार्गिनर ने कुछ इस तरह दी है कि-

“सिगरेट एक श्वेत दंडिका होती है जिसके एक ओर से धुंआ निकलता है और दूसरी ओर से पीने वाला बेवकूफ आदमी होता है।”

किसी ने कहा है-

“सिगरेट के बारे में कह गए मिस्टर गयूफ,
एक सिरे पर आग इसके दूसरे पर बेवकूफ”
मुझे तब और ज्यादा आश्चर्य होता है कि जब

एक पढ़ लिखा व्यक्ति यह जानते हुए भी कि गुटखा, सिगरेट, शराब, तम्बाखू आदि से नशा करना हमारे लिए घातक है, जहर है फिर भी वह उनसे पीछा नहीं छोड़ा पाता है। आज आदमी मन का कितना गुलाम हो गया है कि हृदय का उसके ऊपर अधिकार ही नहीं रह गया है। जिन गुटखों में छिपकली की कटी पूँछ का जहर होता है। सरकार की तमाम चेतावनी-जैसे रेपर के ऊपर बिच्छु बनाना, स्पष्ट शब्दों में कैंसर का कारण लिखना, जहर लिखना इन सब के बावजूद आदमी मजबूर है। बेचारा! मृत्यु के हाथों में सब कुछ छोड़ चुका है। यमदूत को धीरे - धीरे अपने पास बुला रहा है।

पेन किलर, नींद की गोली, गर्भ निरोधक दवाएँ आदि शरीर के लिए अत्यन्त घातक प्रभाव छोड़ते हैं इसके सेवन से जितना हो सके बचें।

शतपदगामी वामपार्श्वशायी

भोजन करने के बाद कम से कम 100 कदम चलना चाहिए। हो सके तो कुछ मिनट बायीं करवट लेटकर आराम करना चाहिए। ध्यान रहे मात्र लेटें, शयन न करें। भोजन के बाद कुछ पाचक पदार्थ का सेवन करें। जैसे सौंफ, गुड़, इलायची आदि।



अभ्यास प्रश्न



Unit 1 – अर्ह ध्यान योग – एक परिचय

लघु प्रश्न

प्रश्न 1 जैन परंपरा के अनुसार प्रथम योगी कौन हैं?

प्रश्न 2 कौन सी मुद्रा जैन योग की प्रमुख विशेषता है। जो मोहरो पर भी मिलती है?

प्रश्न 3 कौन से जैन ग्रन्थ में आसन प्राणायाम तथा ध्यान की प्रक्रियाओं का सूक्ष्म विवेचन किया हुआ है? ग्रन्थ के लेखक का नाम भी बतायें।

प्रश्न 4 बीजाक्षर किसे कहते हैं?

संक्षिप्त प्रश्न

प्रश्न 1 जैन आगम में ध्यान की विशेषता बतायें व किस प्रकार के ध्यान का वर्णन आता है उनके नाम लिखें।

प्रश्न 2 योग शब्द की विभिन्न परिभाषाओं को संक्षिप्त में बतायें।

प्रश्न 3 अर्ह ध्यान योग किस मुख्य पद्यती पर आधारित है?

प्रश्न 4 ज्ञान चार अनुयोगों से ही सुव्यवस्थित होता है। उन अनुयोगों के नाम बताएँ और किस अनुयोग में किसका ज्ञान है वह बताएँ।

विस्तृत प्रश्न

प्रश्न 1 महर्षि पतंजलि के अनुसार योग के आठ अंग कौन से हैं? प्रत्येक अंग को विस्तार से समझाएं।

प्रश्न 2 अर्ह का तीन नाड़ीयों में कैसे प्रयोग किया जाता है?

प्रश्न 3 श्री वीरसेन आचार्य ने योग के चार अङ्गों को किस प्रकार कहा है?



Unit 2 – विधि एवं लाभ

लघु प्रश्न

प्रश्न 1 बैठने के मूलभूत आसन बतायें।

प्रश्न 2 मूलभूत मुद्रायें कौन सी हैं?

प्रश्न 3 प्रणायाम का शाब्दिक अर्थ क्या है?

संक्षिप्त प्रश्न

प्रश्न 1 अर्ह पाँच चरण प्रक्रिया को संक्षिप्त में chart के मध्यम से बताये।

प्रश्न 2 पर्मेष्टि कौन होते हैं, कितने होते हैं। उनकी नाम भी बताये।

प्रश्न 3 शरीर के मुख्य केंद्रों के स्थान, नाम व रंग (ध्यान के लिए) बताएं।

प्रश्न 4 कायोत्सर्ग की विधि बताएं।

प्रश्न 5 नाद के प्रकार व उनकी प्रक्रिया के भेद को बताये।

विस्तृत प्रश्न

प्रश्न 1 अरिहंत मुद्रा का, केंद्र, रंग, करने की विधि व पांच लाभ बतायें।

प्रश्न 2 सिद्ध मुद्रा का, केंद्र, रंग, करने की विधि व पांच लाभ बतायें।

प्रश्न 3 आचार्य मुद्रा का, केंद्र, रंग, करने की विधि व पांच लाभ बतायें।

प्रश्न 4 उप्पाध्याय मुद्रा का, केंद्र, रंग, करने की विधि व पांच लाभ बतायें।

प्रश्न 5 साधु मुद्रा का, केंद्र, रंग, करने की विधि व पांच लाभ बतायें।



Unit 3 – प्राणायाम

लघु प्रश्न

प्रश्न 1 मनुष्य के कितने प्राण होते हैं? नाम भी बताये।

प्रश्न 2 श्वास कितने प्रकार की होती है और कौन कौन सी?

प्रश्न 3 श्वासोच्छ्वास का शाब्दिक अर्थ बतायें।

संक्षिप्त प्रश्न

प्रश्न 1 प्रणायाम से क्या तात्पर्य है? संक्षिप्त में बतायें।

प्रश्न 2 मुख्य नाड़ियों के नाम, व दिशा बतायें।

प्रश्न 3 सूर्य नाड़ी किन कामों के लिए शुभ है?

विस्तृत प्रश्न

प्रश्न 1 प्रणायाम की दो चरण प्रक्रिया के नाम व विधि बतायें।

प्रश्न 2 स्थूल प्रणायाम के भेद विस्तार से समझाएं।

प्रश्न 3 नाड़ी शुद्धि क्या होता है और उसके फायदे बताएँ।



Unit 4 – अर्ह अष्टाङ्ग योग

लघु प्रश्न

प्रश्न 1 ध्यान का फल कितने प्रकार का बताया है? नाम भी बतायें।

प्रश्न 2 ध्यान के लिए कौन सा काल योग्य माना गया है?

प्रश्न 3 समीचीन ध्यान करने वाले उदासीन ध्याता के लिए ध्यान का क्या विषय होता है?

प्रश्न 4 ध्यान की परिभाषा संक्षिप्त में बताएं।

संक्षिप्त प्रश्न

प्रश्न 1 योग के आठ अंग कौन से बतायें हैं?

प्रश्न 2 अर्ह बीजाक्षर पद को define करें।

प्रश्न 3 धर्मरूपी समीचीन ध्यान के n ध्याता कितने और कौन से बतायें हैं? एक एक line में प्रत्येक को बतायें।

प्रश्न 4 जिनेन्द्र देव ने ध्येय कितने प्रकार के बतायें हैं? नाम भी बतायें।

प्रश्न 5 चतुर्विध भावना ध्येय क्या है?

प्रश्न 6 ध्यान के लिए कौन कौन से उचित आसन बतायें गये हैं?

विस्तृत प्रश्न

प्रश्न 1 ध्यान के कितने अंग बतायें हैं और कौन कौन से?

प्रश्न 2 शुभचन्द्राचार्य के अनुसार – संयम का साधक योगी संसार परिभ्रमण के दुःखों को शान्त करने के लिए कहाँ-2 ध्यान करता है?



Unit 5 – ध्यान का सैद्धान्तिक एवं वैज्ञानिक अध्ययन

लघु प्रश्न

प्रश्न 1 Vegetarian शब्द का अर्थ क्या है?

प्रश्न 2 हमारा भोजन कैसा होना चाहिये?

प्रश्न 3 शाकाहारी भोजन व माँसाहारी भोजन में क्या-क्या अंतर हैं?

प्रश्न 4 मितभुक् परिमित भोजन का क्या अर्थ है?

प्रश्न 5 ध्यान कहाँ नहीं करना चाहिये?

संक्षिप्त प्रश्न

प्रश्न 1 सैद्धान्तिक अध्ययन के अनुसार ध्यान के प्रकार बतायें। उनकी शुभ व अशुभ परिणीति भी बताएं।

प्रश्न 2 ध्यान किस किस के आलम्बन से किया जा सकता है?

प्रश्न 3 वर्तमान विज्ञान के अनुसार मन के कौन से तीन रूप बताए गए हैं?

विस्तृत प्रश्न

प्रश्न 1 धर्म ध्यान के भेद प्रभेद बतायें।

प्रश्न 2 पदस्थ ध्यान की विधि उदहारण सहित बतायें।

